
NAINI TAL
Class no.
Book no.
Reg no.

पूज्यपाद पिता श्रीशिवव्रत पांडेय के

पावन चरणों में

समर्पित

तात !

तुम्हीं तो मेरे इस मानव-शरीर के स्रष्टा थे। तुम्हीं इस अकिंचन के मानव-मस्तिष्क और हृदय के विधाता थे। तुम्हारी ही विभूति तो मुझमें रम रही है। इसलिये मेरा अपना कुछ नहीं। जो भूल से अपना समझता था, वह तो तुम्हारी ही देन थी। इसलिये थाती-स्वरूप जो रक्खा था, उसे ब्याज के रूप में तुम्हारे चरणों पर न्यस्त कर रहा हूँ। अपनाना और न अपनाना तुम्हारी मर्जी की बात है।

मैं

तो

वही

तुम्हारा

'रामदीन'

हूँ, जिसे तुमने

प्राणों से भी

अधिक

समझा था।

प्राक्कथन

'चलती पिटारी' परिचय की अपेक्षा नहीं रखती। यह अपनी कहानी आप है। छोटा नागपुर की उपत्यका इसके लिये विशेष आकर्षण रखती है। उसकी पर्वतीय कंदराओं में, विकराल वनस्थलियों में, पथरीली नदियों की वेगवती धाराओं में इसकी कथा-काया का विकास हुआ है। यह न ग्राम में आसक्ति रखती है, और न शहर से विरक्ति। इसे न किसी से अतिशय राग है, और न किसी से अतिशय अपराग। जिसे जिस रूप में देखती है, अपनी पिटारी में बंद कर लेती है। यही इसका दावा है।

मानवता की अन्यतम उपासिका होने के कारण यह जीवन की अनेकता की झाँकी लेने में दिलचस्पी रखती है। अनेकता में एकता और एकता में अनेकता ढूँढ़ना ही इसका ललाम लक्ष्य है। अपने जीवन की हलकी दौड़ शेष कर यह हिंदी-वाङ्मय के मंदिर में प्रवेश चाहती है। इसे प्रवेश देना या न देना वाङ्मय के अविनाशी मंदिर के पुजारियों का काम है। इसे तो अपने ध्येय से मतलब।

जी० बी० बी० कॉलेज
मुज़फ़्फ़रपुर
२०। १२। ४४

रामदीन पांडेय

[१]

आश्विन-मास था। बादलों के उत्पात से आकाश को तुरत ही अवकाश मिला था। दिशाएँ निर्मल थीं। रात का दौरा था। चारो ओर धान, अरहर, कोदो, जिनोर और ऊख के खेत चारु चाँद की चाँदनी में बिहँसते नज़र आते थे। समीपवर्ती सरिता का स्रोत स्वच्छ सलिल लिए बहता चला जाता था। उसमें आवर्त, तरंग और उत्प्लावन का अभाव था। प्रवाह में क्षोभ के बदले शांति थी। जल की गति की वक्रता और भयंकरता ने ऋजुता और सौम्यता धारण कर ली थी। धारा में संतरण और संचरण करनेवाले न पानी की प्रगति की प्रबलता की अनुभूति करते थे, और न धारा के धक्के ही उन्हें पीड़ा पहुँचाने में समर्थ थे।

पत्थररेखा-नदी बिलकुल पहाड़ी थी। इसके तट सौ-सौ फ़ीट ऊँचे थे। तट के एक ओर घनी बस्ती थी, दूसरी ओर विकट, विस्तृत वन। धारा में यहाँ-वहाँ पत्थरों की चट्टानें थीं, जिन पर जल टकराकर फेनिल फुहारे का रूप धारण करता था। अनवरत जल-प्रवाह से चट्टानों के अधस्तल और पार्श्व में बड़ी-बड़ी कंदराएँ बन गई थीं। इन कंदराओं में मदोन्मत्त मतंग तथा अन्य जंगली जानवर गर्मी के दिनों में आसानी

से आश्रय ले सकते थे। वर्षा में पत्थररेखा अनुल्लंघनीय हो जाती थी, पर ग्रीष्म में बिलकुल सूख जाती थी।

शरत् के दिनों में मछुओं का दल इन चट्टानों के उन्नत शृंग पर यहाँ-वहाँ आसन जमाए बक-ध्यान से बंसी, (चिल्लवन बाँस का बना मछली फँसाने का यंत्र) और जाल के सहारे मछली मारता था। नदी पार होने के लिये वर्षा और शरत् के दिनों में नावों की आवश्यकता होती थी; अतः नाव और डोंगियाँ घाट पर बँधी रहती थीं। एक घाट दूसरे से कई गज की दूरी पर स्थित था। सभी घाट प्रकृति की देन थे। इन घाटों में एक विकट घाट रमना था। वहाँ रात को भूतों का भय रहता था।

आश्विन शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि थी। निशानाथ पश्चिम क्षितिज को चूमने पर थे। प्रकाश के स्थान में धीरे-धीरे अंधकार का प्रसार हो रहा था। इसी समय चमरू धीवर ने अपनी डोंगी सरिता के वक्षःस्थल पर चला दी। इसके एक लड़के ने पतवार पकड़ी, दूसरे ने जाल और स्वयं उसने मशाल।

नदी का प्रवाह पूर्व से पश्चिम की ओर था। नाव पानी काटती हुई पूर्व की ओर चल पड़ी। चमरू ने जलती मशाल तेज की। एक घंटे में भाग्य से तीन मछलियाँ जाल में फँसीं। एक तो तौल में अंदाजन् एक मन थी, और दो अन्य छ-छ पसेरी। अतः शीघ्र ही वह घाट पर लौट आया। कारण, तीनों को ढोने-भर मछलियाँ प्राप्त हो गई थीं। दूसरी

वजह यह भी थी कि विजया दशमी के दिन बच्चों से दूर रहना उसे पसंद न था। अपनी डोंगी को दूसरी बड़ी नाव में उलझाकर वह लड़कों के साथ अपनी बस्ती की ओर चल पड़ा।

आज चमरू बहुत खुश था। इतने कम समय में इतने वजन की मछलियाँ उसके हाथ शायद ही लगी थीं। दशहरे के दिन वह अपनी स्त्री और पतोहुओं को कपड़े न दे सका था, इसके लिये उसे बहुत दुःख था। कृष्णपुर-हाट में ये मछलियाँ चाँदी के कम-से-कम दस टुकड़े लाएँगी, यह सोचकर उसके आनंद की सीमा न रही। तीन पुरुषों और तीन स्त्रियों के परिवार के लिये इतने रुपयों में कपड़े-ही-कपड़े हो जायँगे। यह विचारता हुआ वह एक पाँव आगे रखता, तो दूसरा स्वयं आगे बढ़ जाता। आज रात को सारे नदपुरा-गाँव की स्त्रियों ने बन-ठनकर दशहरा मनाया। घर-घर चहल-पहल रही। पर क़िस्मत के मारे हुए उसी के परिवार में, पैसे के अभाव के कारण, ईद का अखाड़ा न जम सका। पर ईश्वर सबकी सुनता है। इस प्रकार के विचार में मग्न वह तट से कुछ ही दूर गया था कि एक पचास वर्ष का दीर्घकाय लठधर "ठहर जा।" कहते हुए चमरू की ओर तीव्र गति से लपक पड़ा। चमरू के क़दम में अपना-अपना क़दम मिलाते हुए, छ-छ पसेरी की दो मछलियों को लिए, उसके जो लड़के चले आ रहे थे, वे आवाज सुनते ही

नौ-दो-ग्यारह हो गए। चमरू भी मछली पटक, जान लेकर भागा। प्रायः आधे घंटे तक ये तीनो डबल मार्च करते रहे, और जब बस्ती में घुसे, तो इनकी जान में जान आई।

घर पहुँचकर चमरू ने भगवान् को धन्यवाद दिया, और भावी कल्याण के लिये गृह-देवता की मनौती की। प्रेत देखने और उसकी हुंकार सुनने का आतंक उसके दिल पर इस क़दर छाया था कि दिल की धड़कन बंद न हुई।

बार-बार चमरू गृह तथा जलदेव और देवियों को गुहराता, और अपने कल्याण की कामना करता। बुरी भावनाओं का प्रभाव मन और स्वास्थ्य पर बहुत पड़ता है। ठीक दूसरे दिन चमरू बीमार पड़ा। ज्वर के उत्ताप में वह अनाप-शनाप बकने लगा। बिछौने से उठकर कभी हँसने लगता, कभी रोने लगता। उसके लड़के बेतरह घबराए। चमरू की स्त्री ठक हो गई। साहस कर उसने ओझा बुलाया।

वह काला नाग आया। भूत की प्रसन्नता के लिये एक बकरा, एक मुरग़ा, एक सुअर, एक जोड़ा धोती, सवा सेर घी तथा कुछ पैसे माँगे। मछलियों की बिक्री से बारह रुपए मिले थे। कुछ रुपए घर से लगाकर धीवरी ने भूतदेव की पूजा के लिये सामग्री जुटाई। पचीस वर्ष के तगड़े, काले, नौ-जवान ओझे ने नई धोती पहनी। आग जलाई। बकरे और मुरग़े चढ़ाए। आग में घी डाला। इसके उपरांत वह एक हाथ से चमरू की चोटी और दूसरे हाथ से उसका दाहना

हाथ पकड़कर शाबर-मंत्र का जप करने लगा। जैसे-जैसे गर्जन कर वह अपना सिर हिलाता, वैसे-वैसे चमरू प्रसन्न मुख देख पड़ता। एक घंटे तक यही अभिनय होता रहा। अंत में धूर्ताधिराज शाबर-मंत्र के द्रष्टा ने आँखें तरेरकर चमरू से पूछा—"बताओ, अब कैसा लगता है?"

चमरू—"बहुत अच्छा।"

ओझा अट्टहास करके बोला—"देखा, मैंने भूत बाँध लिया। यह मेरी मुट्ठी में है। कभी फिर रात के वक़्त रमना-घाट जाने का साहस न करना।"

चमरू ने सिर हिलाकर "अच्छा" कह दिया। धीवरी ने शांति की साँस ली। ओझे के पाँवों पर गिर पड़ी, और हाथ जोड़कर बोली—"बाबा! इस घर को सँभारेंगे। आपकी पूरी सेवा न हो सकी। इसके लिये क्षमा करेंगे।"

मुस्किराता हुआ, और मूछ पर ताव देता हुआ वह चल पड़ा।

देहातों का एक बड़ा हिस्सा इस अंधाधुंध में पड़कर चौपट हो गया है। मनुष्य के जीवन में सुख और दुख बारी-बारी से आते रहते हैं। कभी वह स्वस्थ रहता है, तो कभी रुग्ण; कभी वह प्रसन्न रहता है, तो कभी उदास। कभी वह मक्खन-रोटी खाता है, तो कभी चार दाने का मुहताज हो जाता है। उसे धैर्य से काम लेना चाहिए। शरीर की शक्तियाँ जब क्षीण हो जाती हैं, वे अपना-अपना काम पूरा

नहीं कर सकतीं, तभी मनुष्य बीमार पड़ता है। यदि वह औषधि का सेवन न करे या ओझे की शरण न पकड़े, तो भी स्वाभावतः अच्छा हो जाता है। पर धैर्य-हीन, दीन व्यक्ति घबराहट में पड़, ओझे और वैद्य का आश्रय ले अपने को नष्ट कर देते हैं। समाज के अनेक मनुष्य इतने पतित हैं, सदाचार से इतने दूरस्थ हैं कि दूसरों को ठगने और धोखा देने में ही अपनी बहादुरी बखानते हैं। ऐसे धूर्तों को अपने पर विश्वास नहीं रहता, और न वे सदाचारी तथा सद्बुद्धि के सामने खड़े ही हो सकते हैं। ये ही समाज के कीड़े या घुन हैं।

[२]

नदी-तट के समीप उस विशालकाय लठधर का गर्जन सुनते ही उसके पाँच अन्य साथी, जो उससे तीस-चालीस डग पीछे बारी-बारी से एक बहुमूल्य पिटारी टाँगे लिए आ रहे थे, सहमकर वहीं खड़े हो गए। धीवर के भागने पर वह दीर्घशरीरी खिलखिलाकर हँसा। उसके साथी हँसने की आवाज से रास्ते को निरापद् समझ घने अंधकार में आगे बढ़े। प्रायः एक मन की, तुरत की मारी मछली पड़ी देख सबों ने यात्रा को शुभ और आपद्-रहित समझा। विशालकाय उस मछली को कंधे पर रख आगे चला। इन छः व्यक्तियों में पाँच बड़े हृष्ट-पुष्ट, गठीले-बदन और देखने में खौफनाक थे। छठा छोटा, मोटा-ताजा और दिलेर था। इसके एक हाथ में कुदाली और दूसरे में बुझी लालटेन थी।

सभी रमना-घाट पर जा पहुँचे। घाट के आगंतुकों में लठधर विशालकाय, जो आगे-आगे इठलाता चलता था, पैशाची लीला में सिद्धहस्त था। चोरी करना, डाका मारना, सेंध लगाना, सोए हुए का सिर काट लेना, धोखे से किसी का गला घोटना इसके जीवन के प्रधान व्यवसाय थे। खुले मैदान में किसी से जमकर लड़ना यह जानता ही न

था। छिपकर दूसरों पर चोट करना और बहादुरों के सामने पीठ दिखाना इसके लिये सहज काम थे। स्वस्थ शरीर के सिवा इसके पास कुछ न था। नोच-खसोट, छीना-झपटी से ही पेट के प्रश्नों का समाधान करता था। इसके दो बेटे थे, जो ठीक इसी के आचरण का अनुसरण करते थे। इसका बड़ा लड़का छोटे क़द, दोहरे शरीर का तथा क्रूरकर्मा था। ताक़त में बाप का कान काटता था। अपने को ग़ुलाम पहलवान कहता था। इसका छोटा भाई दिल-बहार बड़ा दिलेर था। चौथा दीर्घकाय का भतीजा था, और पाँचवाँ उसका भानजा। विजय अपने चाचा का प्रति-रूप था। यह चाणक्य के क्षपणक को नाक काटनेवाला था। इसका भानजा किन्नर कायरता से भरा था। पर उस-काने पर वह मानव-रक्त पीने में भी संकोच न करता था। छठा दीर्घकाय का विश्वासी नौकर धूमकेतु था। दीर्घकाय दुःसाहस में मारीच को मात करता था।

नदी के निभृत कगार पर पिटारी रक्खी गई। दीर्घकाय विजय, दिलबहार और धूमकेतु को पिटारी की संरक्षा में छोड़, ग़ुलाम और किन्नर को साथ ले दबे पाँव घाट की नावों को घूरने लगा। वह एक ऐसी डोंगी की खोज में था, जिसे आसानी से चला सके। चारो ओर सन्नाटा छाया था। केवल पत्थररेखा के पेट पर कुछ मछुए नावों के सहारे मछली मार रहे थे। घाट से दूर, धारा के मध्य-स्थित

चट्टान-पुंजों पर बैठे कुछ लोग मशाल बारे बंसी से मछली पकड़ रहे थे। संयोग से दीर्घकाय को वही डोंगी पसंद आई, जिसे चमरू ने बड़ी नाव पर उलझा रक्खा था। गुलाम और किन्नर की सहायता से डोंगी को बड़ी नाव से निर्मुक्त कर दीर्घकाय उस पर सवार हुआ, और अपने दो साथियों के साथ उस ओर चल पड़ा, जहाँ वह बहुमूल्य पिटारी थी। डोंगी के चलने की आवज सुन दिलबहार आदि के कान खड़े हो गए। दीर्घकाय की खाँसी की आवाज सुन वह भाँप गया कि डोंगी तट की ओर आ रही है। संकेत पाते ही पिटारी डोंगी पर रक्खी गई। सभी सवार हुए। चमरू की मछली, जो डोंगी से एक बार उतरी थी, फिर वहीं रक्खी गई। उसकी मृतात्मा को पृथ्वी के गोल होने की अनुभूति होने लगी।

पत्थररेखा का पेट चीरती हुई नाव तीव्र गति से उस तट की ओर चल पड़ी, जहाँ से विस्तृत वन प्रारंभ होता था। चारो ओर अंधकार, नीचे स्वच्छ और शांत सलिल, ऊपर तारकित नभ, साथ में सशंक हृदय और पार्श्व में पिटारी, जिसकी संरक्षा पर डोंगी के सभी प्राणियों का इस लोक में रहना निर्भर था। थोड़ी देर तक सभी मौन रहे। क्या-क्या विचार उनके मन में उठते थे, केवल वे ही जानते और समझते थे। हाँ, एक बात जो सबके मन में प्रमुख थी, वह थी रात के कूच करने के पहले पिटारी की संरक्षा

की व्यवस्था करना। दीर्घकाय की मुस्किराहट में भय और हृदय में प्रकंपन के पेंडुलम प्रबल वेग से चल रहे थे। मुख पर तीव्र व्याकुलता की स्पष्ट रेखा देख पड़ती थी। निशा की निस्तब्धता को अपने शब्दों से बेधता वह बोला। उसके शब्द नाव के संचरण की छपछपाहट में विलीन हो जाते थे, पर डोंगी के यात्रियों को स्पष्टतः सुन पड़ते थे—"अब क्या करना चाहिए। जो होना था, हो चुका। समय अनुकूल है। मार्ग में कोई नहीं मिला; जो मिले, वे प्राणों को लिए भागे। मेरी राय है, पिटारी की वस्तु को टुकड़े-टुकड़े कर नदी में बहा दूँ। पिटारी पर लालटेन का तेल उँडेलकर दियासलाई लगा दी जाय, जिसमें इसका अस्तित्व जगत् से मिट जाय।"

दिलबहार बात काटकर बोला—"आपका कहना ठीक नहीं जँचता। इससे हमारा निस्तार असंभव है। बहुत संभव है, काटने की आवाज सुनकर दूसरे घाट के मल्लुए हमारे पीछे नाव छोड़ दें, या काटने के समय डोंगी ही न उलट जाय। इसके अलावा काटने का कोई तेज हथियार भी नहीं है। फिर भी काटा हुआ टुकड़ा खोज में कहीं मिल जाय, तो अनर्थ उपस्थित हो जायगा।"

किन्नर को भी दिलबहार की बात भली प्रतीत हुई। वह उसके राग में अपना राग मिलाता हुआ बोला—"मैं भी काटने के प्रस्ताव का विरोध करता हूँ। एक तो हम लोगों ने एक निर्दोष प्राणी के जीवन के साथ घोरतम अन्याय किया,

दूसरे, उसकी मिट्टी पर चोटकर पैशाची लीला को क्रूरता के चरम शिखर पर चढ़ाना है। मेरी सम्मति है, नदी पार होकर इस पिटारी को उस विकट जंगल में ले चलें, जिसके मध्य से एक सोता बहता है। वहीं सोते के बीच एक गड्ढा खोदकर इस मिट्टी को मिट्टी में मिला दें।"

किन्नर की बातें सबको पसंद आईं।

---

[३]

नदपुरा-गाँव का नामी दीर्घकाय दशहरे के ठीक सुबह उस बड़ी मछली को लिए रामपुर-थाने में गया। उस दिन थाने में खूब धूमधाम थी। दारोगाजी को सलाम कर बोला—"हुजूर, मैंने रात को एक बड़ी मछली मारी है। इसे यहाँ लाया हूँ। मेरी बड़ी ख्वाहिश है कि हुजूर इस मेरी छोटी भेंट को क़बूल करते।"

दारोगाजी बहुत खुश हुए, और उसे मछली रख देने की आज्ञा दे अन्यत्र चले गए। दारोगा राघवेंद्र के यहाँ आज प्रीति-भोज है। कई दिनों से भोज की तैयारियाँ हो रही हैं। बनारस से फल मँगवाए गए हैं। गया से पेड़े और राँची से अँगरेजी खाना। दही, दूध और घी की तो बात ही क्या पूछना। गाँव-गाँव से चौकीदार मटके-के-मटके दूध, दही और घी लिए आ रहे हैं। तरकारियों का ढेर लग गया है। इलाक़े का शायद ही कोई कोयरी और कुँजड़ा बचा होगा, जो तरकारियाँ थाने में न लाया हो। हलवाई पुए, पूरियाँ और तरह-तरह की मिठाई बनाने में मस्त हैं।

थाने के बाहरवाले बाग़ में बड़ी-बड़ी मेजें लगी हैं। उन पर स्वच्छ चादरें बिछी हैं। कुछ मेजों पर केक, पेस्ट्री, सैंड

बीच, विस्कीट, मछली और फल रक्खे हैं। कुछ पर मिट्टी की तश्तरियों में रसगुल्ले, संदेस, पेड़े, दालमोट, कमला नीबू के टुकड़े आदि रक्खे हैं। थाने के भीतर साधारण अभ्यागतों के लिये पुत्रों और पूरियों की व्यवस्था है। जल का भी अत्युत्तम प्रबंध है। स्वच्छ तथा चमकती हुई बोतलों में लेमनेड, सोडावाटर तथा शरबते-अनार और केवड़े रक्खे हैं।

ठीक दिन के चार बजे निमंत्रित सज्जन आ पधारे। इनमें उल्लेखनीय सदर एस० डी० ओ० पी० सी० चौधरी, आई० सी० एस०, स्थानीय स्कूल के हेडमास्टर जगदानंद-प्रसाद षट्शास्त्री, संस्कृत-कॉलेज के प्रिंसिपल दीनबंधु पाठक, रायसाहब मनमोहन चटर्जी, बाबू राजीवरंजनसिंह, मौलवी मंजूररसूल तथा राजा रामपालसिंह प्रभृति थे। पी० सी० चौधरी यद्यपि भारतीय हैं, तथापि इनकी वेश-भूषा, रहन-सहन, खान-पान, उठना-बैठना, सभी विलायती है। हिंदू-सभ्यता, संस्कृति तथा भोजन से इन्हें सख्त चिढ़ है। अपने बच्चों को विलायती ढंग की शिक्षा प्रदान करना, उन्हें विलायती वातावरण में रखना, उन्हें देश की भाषा के ज्ञान से वंचित करना इन्हें निहायत पसंद है। इनकी धर्मपत्नी इसी देश की हैं। देश के वातावरण में परिपालित हुई हैं। पर देवी के बदले मेम साहबा कहलाने में गर्व करती हैं। विलायती ढंग से जीवन व्यतीत करनेवाली

महिलाओं के बीच संचरण करने में इन्हें अधिक आनंद मिलता है।

जगदानंद शास्त्री काव्य-प्रसिद्ध चमगीदड़ हैं। कभी तो वह विलायती पोशाक पहन पक्के साहब बन जाते हैं, कभी धोती, चादर और टोपी पहने पूरे हिंदुस्थानी। गुप्त रूप से यह सोडावाटर, लेमनेड, बर्फ़, केक तथा बिसकुट आदि सब चढ़ा लेते हैं। विलायत से लौटे सज्जनों के यहाँ भी भोजन करने में संकोच नहीं करते। पर जब कभी पार्टी में पधारते हैं, तो पूरे शाकभोजी बकरा बन जाते हैं। ऐसी पार्टी में एकांत मेज़ पर केवल हिंदुस्थानी भोजन करते हैं। फल इनके लिये विशेष आकर्षण रखता है। शीशे के गिलास का जल इन्हें खूब भाता है। जल किसके द्वारा भरा गया है, इसकी परवा यह नहीं करते। इनका ध्यान इसी बात पर रहता है कि पानी इन्हें उच्च हिंदू के हाथों मिले। जिस पार्टी में शाकाहारियों के लिये व्यवस्था नहीं होती, वहाँ भी फल कचरने का लोभ संवरण नहीं करते। फल माँग ही लेते हैं, चाहे उत्तर में ज़ोरदार 'न' का ही सामना क्यों न करना पड़े।

पंडित दीनबंधु उच्च कोटि के ब्राह्मण हैं। बड़े नियम से रहते हैं। किसी के यहाँ भोजन तो नहीं करते, पर मांस और मछली से इन्हें परहेज़ नहीं। पार्टी में वस्तुतः शरीक नहीं होते। परंतु जहाँ अँगरेज़ी खाना खानेवाले साहब बैठते

हैं, यह भी पंडिताऊ पोशाक में बैठकर नाक को तृप्ति गंध से और कान को आनंद संलाप-श्रवण से देते हैं। गुफ्तगू में खूब भाग लेते हैं। विना हँसी की हँसी हँसते हैं। दुनियाबी कामों में होशियार हैं। अपनी कमजोरी को कृत्रिम गंभीरता से छिपाने का प्रयत्न करते हैं।

सभी सज्जन भोजन करने बैठे हैं। राघवेंद्र निमंत्रित सज्जनों के प्रति विशेष रूप से सावधान हैं। गप्पें हो रही हैं। मनो-विनोद के लिये कुछ दूर पर संगीत की लहरियाँ ऊपर उठ-उठकर वायुमंडल को झंकृत कर रही हैं। पार्टी में विशेष दिल-चस्पी रखनेवालों में चटर्जी, मंजूररसूल और रामपालसिंह हैं।

मंजूररसूल—"दारोगाजी ! मछली तो लाजवाब है। दिल चाहता है, इसे हमेशा लब से लगाए रक्खूँ। कहाँ से मँगाई थी ?"

राघवेंद्र—"नदपुरा-गाँव के एक रईस ने भेजी थी। इधर की मछलियाँ बड़ी मजेदार होती हैं।"

पी० सी० चोधरी—"महाशय ! आप क्या कहते हैं ? नार्थ-सी की माँछ की बराबरी यहाँ की मछली क्या करेगी। पर इस मछली का स्वाद अजीब हैरत-अंगेज है।"

चटर्जी—"मिस्टर चौधरी ! आपके मुँह से ऐसी बात ! बंगाल की मछलियों का गान तो फ्रेंच यात्री वर्नियर ने ऐसा किया है, जिसे सुनकर योरपवाले आज भी इस विषय में बंगाल का लोहा मानते हैं।"

पी० सी० चौधरी—"हम बंगालियों का यह पक्षपात है। प्रांतीय संकीर्णता के कारण किसी बात पर हम निष्पक्ष रूप से विचार नहीं कर सकते।"

राजा रामपालसिंह—'चौधरी साहब! युद्ध के कारण इन दिनों योरपवालों को भोजन के लाले पड़ रहे हैं। नार्थ-सी की मछली तो उनके लिये नंदन-वन का पारिजात हो रही है।"

दीनबंधु—हाँ सरकार! बहुत ठीक। यथार्थ है। योरप की जातियाँ अंधी हो गई हैं। अपने पाँवों पर खुद कुल्हाड़ी मार रही हैं। हम लोगों की तरह आराम से रहकर रसगुल्ले, फुलौड़ी कचरती रहतीं, तो उनका क्या बिगड़ता।"

पी० सी० चौधरी—"आप भूल में हैं, पं० दीनबंधु! योरप की जातियाँ प्रगतिशील हैं। उनके जातीय जीवन के लिये युद्ध अनिवार्य है। अपनी जाति को आबाद रखने के लिये वे एक दूसरे से लड़ती हैं।"

जगदानंद शास्त्री—"क्या बिना युद्ध के जातीय जीवन का अस्तित्व संभव नहीं?"

राजा रामपालसिंह—"जी नहीं। जिस प्रकार वायुमंडल में आँधी उठती है, पृथ्वी पर भूकंप होता है, और सागर में ज्वार-भाटा, उसी प्रकार मानव-समाज में आत्मसंरक्षा और जातीय जीवन के विस्तार के लिये युद्ध छेड़ना आवश्यक हो जाता है। युद्ध की तह में आवश्यकता, अभिलाषा, गर्व,

स्वार्थपरता, प्रतिहिंसा, घृणा और भू-लिप्सा की भावनाएँ भरी रहती हैं।"

पी० सी० चौधरी—"बेशक राजा साहब! किसी भी क़ौम की जिंदगी उसकी रक्षा करने की शक्ति पर निर्भर है, और सफलता-पूर्वक अपने स्वत्वों के लिये युद्ध करने पर।"

मंज़ूररसूल—"क्या हक़ों की हिफ़ाज़त लीग ऑफ़् नेशंस के ज़रिए मुमकिन नहीं?"

राजा रामपाल (जोश में आकर)—"मौलवी साहब! राजनीतिक मामलों को समझना लड़कों का खेल नहीं। राष्ट्र या क़ौम की स्थिति किसी भी राजनीतिक ढकोसले पर निर्भर नहीं रह सकती।

The existence of a nation will never depend on arbitration or any other political quackery. The existence of a nation depends on its ability to defend itself and to make war with success."

बात बढ़ते देखकर राघवेंद्र ने अभ्यागतों से सुशील मल्लिक के गान सुनने के लिये अनुरोध किया। कुछ समय बाद प्रतिष्ठित सज्जन बिदा हुए, और राघवेंद्र ने अन्य निमंत्रित व्यक्तियों को भोजन कराया। दीर्घकाय भी उन आगंतुकों में एक था। राघवेंद्र ने उसकी ओर देखकर कहा—"तुम्हारी मछली की बड़ी तारीफ़ हो रही थी। समय-समय पर ऐसी मछलियाँ पहुँचाया करोगे।"

दीर्घकाय—"हुजूर ! हुक्म की देरी है, नहीं तो मैं पिटारी-की-पिटारी ऐसी मछलियाँ हाजिर कर दूँगा।"

---

[४]

चंगा होते ही चमरू रमना-घाट गया। अपनी डोंगी न पाकर बेतरह घबराया। सभी घाटों पर खोज की। जिस किसी से नदी के किनारे भेंट होती, उससे अपनी डोंगी की चर्चा करता। डोंगी ही उसकी जीविका का स्रोत और उसके परिवार के भरण-पोषण का प्रधान साधन थी। डोंगी के वियोग में पागल होकर उसने बहते हुए नदी-जल से पूछा, सन-सन करती हुई हवा से पूछा, निर्जन घाटों से जिज्ञासा की, पर किसी ने डोंगी का पता न बताया। अंत में गोधूलि के समय मन मारे घर लौटा।

रास्ते में दीर्घकाय से भेंट हुई। यहाँ भी डोंगी का प्रश्न छेड़ा, पर सूखा जवाब मिला। जिस समय घर पहुँचा, ठीक उसी समय इसके दोनो लड़के अपनी-अपनी स्त्री के साथ धान के खेत से वापस आए थे। दिन-भर धान के खेतों की घास और मरेवनों (एक तरह की घास) के निकाने में निरत रहने के कारण ये अति क्लांत देख पड़ते थे।

धीवरी पति और पुत्रों की बाट जोह रही थी। उसने साँवाँ का भात पकाकर रक्खा था। उसे दुःख इस बात का था कि वह दाल या तरकारी का सामान न जुटा सकी थी।

पति की राह टकटकी लगाए इसलिये देख रही थी कि वह एक-दो मछलियाँ लेते आवेंगे। उन्हीं के झोल से बियारी होगी। पर पति को मन मारे और खाली हाथ आते देख उसका माथा ठनका। झोपड़े में जल्दी से घुस, एक पीढ़ा ला उन्हें बैठने के लिये दिया। पति के पाँवों को कठौते के जल से पखारा। बेटों को भी पाँव धोने के लिये टहरी (मिट्टी की दोहनी) में जल दिया। सभी भूखे थे। नाड़ियाँ शिथिल पड़ रही थीं। आँगन ही में पलहथी मार सभी भोजन करने बैठ गए। धीवरी ने बात-की-बात में वंशफूल में नमक, मिर्च और माँड़ डालकर बड़ी मजेदार कढ़ी तैयार की। सबके सामने कठौते में भात और कढ़ी परोस और मिट्टी की टहरी में पानी रख आप स्वयं पति की ओर ताकती वहीं बैठ गई।

चमरू—"कलटू और फूलेना! तुम दोनो धान के पीछे हैरान रहते हो। तुम्हारी मा को घर से फ़ुरसत नहीं। ये दोनो राजरानी हैं। अब हमारा घर चौपट हो गया।"

धीवरी (घबराकर)—"इतनी बौछार क्यों? कहो तो, बात क्या है? अगर कोई बैठा रहे, तो तुम्हारा कहना भी फबेगा।"

चमरू—"कलटू की महतारी! हम लोगों का सर्वनाश हो गया। आज सुबह वहाँ गया, तो डोंगी को लापता पाया। सारा दिन उसी की खोज में बिता दिया। कोई मल्लाह पता नहीं बताता। दूसरी डोंगी अभी तैयार नहीं करा सकता। न

पास पैसे हैं, और न बढ़ई को फ़ुरसत। वे सभी हल और टाड़ी (हल में छेदकर उसमें एक खोखला बाँस बाँध देते हैं। उसी के सहारे इस छेद से गेहूँ बोया जाता है।) बनाने में लगे हुए हैं। दो-एक महीने बाद नदी का जल भी डोंगी चलने लायक़ न रहेगा। जो कुछ भी पैदा कर सकता था, सब ख़त्म हुआ। अब अन्य ख़र्च कैसे चलावेंगे, यह सोच हृदय फटा जा रहा है।"

धीवरी—"मा दुर्गे! यह क्या आफ़त पर आफ़त आ रही है। इसी की कमाई से तो हम लोग जीते थे। कपड़े आदि ख़रीदते थे। रोटी भी इसी से चलती थी। हाय! यह क्या ग़जब हुआ। जगदंबिके! पता लगा दो। एक बकरा पूजूँगी।"

कलट्टू—"दादा! उस ओझे को बुलाकर शकुन कराया जाय। वह देवबली है। जरूर पता बता देगा।"

धीवरी—"ठीक कहा, बेटा! मैं भूल रही थी।"

चमरू—"बेवक़ूफ़! तुम लोग नहीं जानते, वह बड़ा मक्कार है। मेरी बीमारी में तुम लोगों ने उसके सामने सारा घर झाड़ दिया। अब घर में बचा ही क्या है, जिससे उसकी पूजा होगी। खोज-ढूँढ़ करो। मिल जाय, तो वाह-वाह, न मिले, तो हाय-हाय करने के अतिरिक्त अब दूसरा उपाय ही क्या है?"

फूलेना—'मा! दादा ठीक कह रहे हैं। उसे न बुलाओ।

वह बड़ा फ़रेबी है। जो दो-चार सेर साँवाँ के चावल हैं, वे भी पार हो जायँगे। तब हम लोग खायँगे क्या ?"

धीवरी—"उसके शकुन से अगर डोंगी का पता लग जाय, तब हम लोगों का जीवन बसर क्या न होगा ?"

फूलेना की स्त्री—"दादाजी ! माताजी ठीक कह रही हैं। वह बड़ा देवबली है। उसका शकुन ठीक होता है। मैं उसे बुला लाऊँगी। पीछे भी उसे कुछ दे दिया जायगा।"

कलटू—"दादा ! आज सारे गाँव में एक और खबर कानोंकान फैल रही है।"

चमरू—"वह क्या ?"

कलटू—"गाँव के मालिक नरेंद्रसिंह दशहरे की रात से ग़ायब हैं। आज उनका मँझला बेटा जंगबहादुर गाँव के चौकीदार के साथ थाने की ओर जा रहा था।"

चमरू—"ग़ज़ब की बात है। दशहरे की शाम को जब मैं पत्थररेखा से लौट रहा था, उनसे ठीक ब्रह्मदेवता के टाँड़ पर भेंट हुई। मैंने प्रणाम किया, और उन्होंने पिता की भाँति मुझसे कुशल-प्रश्न पूछा। ऐसा दयालु मालिक मैंने नहीं देखा। वह एक पैसा भी घाट का टैक्स नहीं लेते थे। दीर्घकाय और उसके बेटों से हम रैयतों की रक्षा करते थे। भगवान उनकी रक्षा करें।"

धीवरी—"मुझे तो शक हो रहा है कि दीर्घकाय आदि ने मालिक को मार डाला है।"

चमरू—"वह तो बहुत सावधान रहते थे। कचहरी में हमेशा एक-दो नौकरों को सुलवाते थे।"

धीवरी—"सभी उस दिन अपने-अपने घर पर दशहरा मना रहे थे। उनके आदमियों से आज ही यह बात मालूम हुई है।"

चमरू—"हमें भी अब शुबहा हो रहा है कि दीर्घकाय ने या तो हमारी डोंगी कहीं बेंच दी है, या कहीं भेज दी है।"

फूलेना—"दादा! हम लोग भी थाने में इत्तिला कर दें कि हमारी डोंगी किसी ने चुरा ली है।"

चमरू—"अरे! हमारी बात कौन सुनेगा। दरब का दरबार है। जब तक थानेदार का हाथ गर्म न होगा, वह तुम्हारी बात सुनी-अनसुनी कर देगा।"

चमरू और दीर्घकाय आदि जिस गाँव में रहते हैं, वह नदपुरा नाम से प्रसिद्ध है। इसमें तीन टोले हैं—एक टोले में ब्राह्मण, राजपूत और वैश्य रहते हैं, दूसरे में अहीर, कोइरी तथा चेरो और तीसरे में धीवर, धोबी, चमार और दुसाध आदि अछूत। १६४१ ई० की मर्दुमशुमारी के अनुसार जन-संख्या ५०० है।

इस गाँव में रहनेवाले ऊँच हिंदू सदा एक दूसरे से वैर-भाव रखते हैं। इनकी चाल टेढ़ी, बोली कर्कश, मन खोटा, बुद्धि कलुषित और कर्म कुत्सित हैं। ऊँच हिंदुओं में तीन दल हैं—एक नरेंद्रसिंह का दूसरा दीर्घकाय का और तीसरा हरदेव का। नरेंद्र और हरदेव, दोनो धन-जन-संपन्न व्यक्ति हैं। दोनो के घरों में शिक्षा का प्रवेश है। दोनो की जमींदारी पाँच-छः गाँवों में बिखरी है। नरेंद्र के सभी बेटे शिक्षित हैं। हरदेव के भाई तो प्रायः मूर्ख हैं, पर बेटे और भतीजों ने अल्प शिक्षा पाई है। दोनो के परिवार कभी नदपुरे में रहते हैं, तो कभी नदपुरे से पूर्व दो मील की दूरी पर पत्थररेखा के तट पर स्थित कलमपुर गाँव में। दशहरे के अवसर पर नरेंद्र का परिवार कलमपुर में था।

हरदेव नौकरी पर रहता था। यह बड़ा चालाक आदमी था। धोखा देना, झूठ बोलना, दूसरों की निंदा करना, अपना काम साधने के लिये नीच-से-नीच युक्तियों का सहारा लेना अपना कर्तव्य समझता था। इसके शरीर का रंग काला, मुँह कुछ लंबा, दाँत निकले हुए और आँखें गोल-गोल और रतनार थीं। इसने पढ़ा कम था, पर डींग हाँकने में अपनी जोड़ नहीं रखता था। शिक्षक होते हुए भी यह गुरु शिष्यों से घूस लेता था। इसके भाई और बेटे भी अन्याय-मार्ग पर चलने में आनंद प्राप्त करते थे। दीर्घकाय आदि भी इन्हीं लोगों की राय में रहते थे। दोनो की चालों में सादृश्य था। पर दोनो एक दूसरे से सावधान रहते थे।

नरेंद्र शूर, वीर, सहृदय, निष्कपट और आत्माभिमानी व्यक्ति था। स्वभाव से क्रोधी, चरित्र से निष्कपट तथा मन से पवित्र था। शरीर का रंग गोहुवना, शरीर हृष्ट-पुष्ट, बाहु मांसल और आकार मँझला। इसके परिवार में एक ६० वर्ष का बूढ़ा पिता, दो लड़के, एक स्त्री, दो पतोहू तथा दो कन्याएँ थीं। इसका बड़ा लड़का वचनशूर एकाउंटेंट जेनरल के दफ़्तर में काम करता था। यह खूब लिखा-पढ़ा था, पर विवेक से अधिक काम नहीं लेता था। धैर्य और बुद्धि की कमी न थी, पर स्वार्थपरता का गुलाम था। अपने स्वार्थ में हानि देखकर इसने अपने पिता नरेंद्र से बोलना छोड़ दिया था, और अपने बच्चों के साथ राँची में ही रहा करता था।

नरेंद्र का दूसरा लड़का जंगबहादुर था। पिता के दुलार तथा वचनशूर के बहकावे में पड़कर यह शहर ही में रहना पसंद करता था। देहाती जीवन से इसे घृणा थी। विलायती वेष-भूषा, रहन-सहन, खान-पान इसके लिये विशेष आकर्षण रखते थे। यह बात करने में प्रवीण, उद्दंडता में अग्रणी, भोजन में कुशल और कर्तव्य-पालन में शिथिल था। पढ़ना छोड़ कभी सिनेमा में काम करता, तो कभी नाटक-मंडली में भाग लेता, और कभी संकीर्तन-दल में सम्मिलित होकर राम-नाम के नारे लगाता।

नदपुरे की नीची जातियाँ कर्मठ और स्वामिभक्त थीं। ये एक दूसरे से प्रेम रखती थीं। आपत्ति पड़ने पर एक दूसरे की सहायता करने में तनिक भी संकोच नहीं करती थीं। पर इन जातियों की हस्ती नहीं के बराबर थी। दीर्घकाय इनसे बेगार कराता, इनके घरों से जबरदस्ती चीजें निकाल लेता। यदि ये कुछ बोलते, तो इनकी अच्छी मरम्मत कर देता। इनके हलों से अपने खेत जुतवाता, इनकी बहू-बेटियों पर बलात्कार भी कर देता। दीर्घकाय की ऐसी धाक जमी थी कि ये नीचवर्ग के व्यक्ति चूँ नहीं बोलते। कभी-कभी इन ग़रीबों की मदद नरेंद्र करता था। ज़ालिम दीर्घकाल के पंजों से अबलाओं को छुड़ाने में जान लड़ा देता था। इसी कारण दीर्घकाय और नरेंद्र में तनातनी चलती थी। दीर्घकाय की सारी ज़मींदारी ख़रीद लेने पर भी नरेंद्र को प्रजाओं से

हराई नहीं लेने देता था, और उन्हें उभाड़कर नरेंद्र के विरुद्ध खड़ा करता था।

इन दोनो के बीच अदालत में कई मुक़दमे भी हुए। हर-एक मुक़दमे में दीर्घकाय को हार खानी पड़ी, एवं दीर्घकाय नरेंद्र का जानी दुश्मन हो गया। हरदेव जब कभी छुट्टियों में नदपुरा आता, तो दीर्घकाय के कानों को नरेंद्र के विरुद्ध भरता। दीर्घकाय को नरेंद्र के प्रति ऐसी घृणा हो गई, और ऐसा प्रबल रोष हो गया कि वह हमेशा इस ताक में रहता कि कब वह नरेंद्र को ख़त्म कर दे।

नरेंद्र सदा कलमपुर में दशहरा मनाया करता था। वृद्ध पिता के चरणों की वंदना करना तथा अपने परिवार से इस शुभ अवसर पर मिलना अपना पवित्र धर्म समझता था। जब वह दशहरे में कलमपुर नहीं गया, और दो दिन बीत गए, तब नरेंद्र के पिता के कान खड़े हो गए। उसने जंगबहादुर को नदपुरा भेजा। वह वहाँ गया। नदपुरे के घर में ताला बंद पाया। कचहरी में चौकी पर दरी बिछी थी। पलंग पर बिछौने लगे थे। नौकर मौजूद था। वहाँ उसे ख़बर मिली कि नरेंद्र दशहरा मनाने कलमपुर गए हैं। इस संवाद ने उसकी चिंता और शंका को बेतरह बढ़ाया। जंगबहादुर ने घबराहट में गाँव का कोना-कोना छान डाला। प्रत्येक व्यक्ति से पिता के संबंध में पूछा, वृक्ष के पत्तों से पूछा, पत्थररेखा के जल-कणों से जाँच की, डोंगी के पटरों

को घूरा, पत्तियों की ओर ताका, और मूक पशु की ओर भी निहारा, पर सभी ओर से निराशा-भरा उत्तर मिला। अंत में लाचार हो रामपुर आया, और घबराहट में नीचे-लिखे आशय का तार वचनशूर के पास भेजा—

वचनशूर

एकाउंटेंट जेनरल-ऑफ़िस

राँची

दशहरे की रात से पिता ग़ायब हैं! ख़ून-ख़राबी की शंका है! शीघ्र आएँ।

जंगबहादुर

रामपुर

इसके बाद वकीलों से राय ले, थाने में जा इत्तिला की। दारोग़ा राघवेंद्र ने इत्तिला अव्वल दर्ज की, और जंगबहादुर से पूछा—"तुम्हें किन-किन व्यक्तियों पर संदेह है?" नौजवान, अननुभवी जंगबहादुर ने अनेक व्यक्तियों पर अपना संदेह प्रकट किया, जिनमें उल्लेखनीय दीर्घकाय और उसके बेटे, भतीजे तथा हरदेव प्रभृति हैं।

मनुष्य का प्रायः ऐसा स्वभाव होता है कि वह अपने बुरे कर्मों को छिपाने की प्रबल चेष्टा करता है, और अच्छे कामों के प्रख्यापन करने की उसे उत्कट प्रवृत्ति रहती है। कुत्सित कर्मों को गुप्त रखने के लिये वह सारी मानवीय युक्तियों का

आश्रय लेता है—रात की घनी अँधियारी का, सघन वन की निर्जनता का, पर्वत-कंदराओं की दुष्प्रवेश्यता का और मरुत्-स्थल की दुरूहता का। विश्वासी-से-विश्वासी सहयोगी का पल्ला पकड़ता है। अपने स्वजनों से, सहधर्मिणी से, गुरु से भी अपने बुरे कर्मों की चर्चा नहीं करता। अपनी मुख-मुद्रा को सौम्य, गंभीर, निष्कपट और निर्दोष बनाए रहता है। मुँह पर किसी प्रकार के विकार की छाया भी आने नहीं देता। तो भी सृष्टि का विधान और प्रकृति का नियम ऐसा है कि कार्य स्वयं गुहार करने लगता है। पाप का भंडा फूट जाता और वह लोक के सामने नग्न रूप में प्रकट हो जाता है।

नदपुरे का एक व्यक्ति था, जो वस्तुतः साहसी, गंभीर और नीति-पटु था, तथापि रह-रहकर उसके हृदय में अनिष्ट की शंकाएँ उठतीं और उसकी मुख-कांति को मलीन कर देती थीं। उसे न दिन चैन था, और न रात नींद आती थी। उसके हमराहियों को भी मानसिक शांति लुप्त हो गई थी। सभी अपना दिन गिन रहे थे। सभी उस आपदा की प्रतीक्षा कर रहे थे, जो किसी क्षण उन पर आनेवाली थी। प्रत्येक पल वे दुर्भावनाओं के शिकार बने रहते थे। उनके हृदय चिंता की चिता बने हुए थे, और मस्तिष्क व्यग्रता के बसेरे।

---

[६]

आज नदपुरे में तहलका मचा है। हजारों की संख्या में गाँव-गाँव के आदमी इकट्ठे हुए हैं। सबके चेहरे पर उदासीनता छाई है। पुलिस दौड़-धूप लगा रही है। राघवेंद्र, उसके सिपाही, चौकीदार, सभी चंचल, क्षुब्ध और बहुत सावधान देख पड़ते हैं। जंगबहादुर और वचन-शूर के मुखमंडल पर करुणा और शोक की रेखाएँ स्पष्ट झलक रही हैं। नरेंद्र के पिता के करुण-क्रंदन से आकाश फटा जा रहा है। उसके रोदन में संताप का धुआँ है, वात्सल्य का स्रोत, करुणा की उमड़ी धारा और क्षोभ-तरंगों की हिलकोरें।

राघवेंद्र सबसे अधिक गंभीर, व्यथित, उद्विग्न और तत्पर देख पड़ता है। उसने गाँव में आते ही नरेंद्र के बिछौने की जाँच की, उसके पलंग को उलट-पलटकर देखा, पलंग की रस्सियों को घूरा, उसके पावों और पाटियों को नजर गड़ाकर चश्मे के सहारे देखा। नरेंद्र की कचहरी की धूलि, उसके बरामदे के कण-कण पर धीरे-धीरे बड़ी गवेषणा से चर्म-चक्षु और विचार-चक्षु दौड़ाए। पर कहीं से कुछ भी गंध न मिली।

अंत में घर खोलने के लिये कुंजी की तलाश की। कुंजी ग़ायब थी। नरेंद्र के पहनने के कपड़े खोजे। वे भी लापता थे। उसके जूतों और घड़ी की तलाश की। सभी फ़रार थे। जाँच से मालूम हुआ कि नरेंद्र कुंजियाँ कटि-सूत्र में बाँधता था।

नरेंद्र के सभी नौकर बुलाए गए। उनका बयान हुआ। उन सबने कहा—"दशहरे के दिन मालिक ने हम लोगों को एक बजे दिन से सात बजे रात तक दशहरा मनाने के लिये छुट्टी दी थी। उन्होंने कहा था, हम कलमपुर जायँगे। जब हम लोग शाम को सात बजे मालिक के बरामदे में वापस आए, तो उन्हें वहाँ न पा यह समझा कि वह कलमपुर चले गए होंगे। जंगबहादुर बाबू से कल यह सुनकर कि वह वहाँ भी नहीं गए थे, हम लोग घोर चिंता में पड़ गए हैं। दशहरे के दिन क़रीब ग्यारह बजे दिन को मालिक से मिलने के लिये दीर्घकाय और हरदेव आए थे। उन लोगों में क्या बातें हुईं, हम लोग नहीं जानते। मालिक और दीर्घकाय के दर्म्यान बहुत दिनों से तकरार चली आ रही है। हरदेव से भी अनबन रहता है। हरदेव और दीर्घकाय के चले जाने पर मालिक ने इतना ही कहा था कि मुझे आज एक बार दीर्घकाय और हरदेव के यहाँ जाना पड़ेगा। भेदभाव भूलकर जब वह मेरे यहाँ आए, तो मेरे लिये भी लाज़िम है कि मैं भी उनके किए अपकारों को भूल उन्हें आज से अपना मित्र ही समझूँ।"

नौकरों के इस इज़हार से राघवेंद्र ने यही अनुमान किया कि दिन के एक बजे के बाद किसी समय नरेंद्र अपने नदपुरे-वाले घर से हर दिन के पहननेवाले कपड़े पहने निकला है। दीर्घकाय और हरदेव के यहाँ गया, या ऐसी किसी दूसरी जगह गया, जहाँ से फिर न लौटा। इस बात की गाँठ बाँध, बचनशूर से अनुमति ले, राघवेंद्र ने घर का ताला तोड़ अंदर प्रवेश किया। मकान के भीतर की सारी चीज़ें जैसी-की-तैसी थीं। अंदर मकान भी नरेंद्र का पता न दे सका। वह बड़ा भयावह और निष्प्रभ प्रतीत होता था। उसके प्रत्येक बाँस, काठ और खपड़े से उदासी की वर्षा हो रही थी। बचनशूर और गाँववालों के सामने दूसरे ताले से वह घर फिर बंद किया गया।

अब राघवेंद्र ने गाँव के व्यक्तियों से इज़हार लेना शुरू किया। दीर्घकाय ने अपने बयान में कहा—"मैं दशहरे की शाम को राँची से आया था। मुझसे नरेंद्र से उस दिन या उसके एक सप्ताह पहले से भेंट नहीं हुई। मित्रों के आग्रह से मैं पत्थररेखा में मछली मारने क़रीब बारह बजे रात को गया था। मेरे साथ हरदेव, वंशी धीवर और धूम्रकेतु आदि थे। दूसरे दिन प्रातःकाल मैं थाने में मछली ले गया था। हरदेव बाबू भी मेरे साथ ही राँची-ज़िले के कुडु गुरु-ट्रेनिंग स्कूल से एक ही लॉरी पर आए थे। इसलिये नरेंद्र के नौकरों का बयान सरासर झूठ है। नरेंद्र

बाबू बहुधा डोंगी पर सैर करते थे। कल चमरू धीवर से मालूम हुआ कि दशहरे की रात से उसकी डोंगी ग़ायब है। नरेंद्र बाबू को नाव द्वारा सैर करने की आदत थी। वह चमरू की डोंगी चलाते होंगे। शायद पत्थररेखा की चट्टानों पर टकराकर वह उलट गई हो। वह डूब गए हों, और डोंगी बह गई हो।"

हरदेव, वंशी धीवर और धूम्रकेतु ने दीर्घकाय के कथन की पुष्टि की। हरदेव के बयान भी इन्हीं लोगों के कथनों से सादृश्य रखते थे।

चमरू बुलाया गया। काँपता, हाँफता और गिड़गिड़ाता हुआ चमरू दारोग़ा के सामने हाज़िर हुआ।

राघवेंद्र—"बुड्ढे! तुम्हारी डोंगी कहाँ है? मैं नदी के उस पार जाऊँगा। उसे ठीक रख।"

चमरू—"दुहाई सरकार की! दशहरे की सुबह से मैं बीमार पड़ गया था। लड़के धान निकाने में लगे थे। कल मैं घाट पर गया। डोंगी न पाकर चारो ओर खोज की, पर अभी तक सुराग़ नहीं पाया। दूसरे-दूसरे मछुओं से मालूम हुआ कि दशहरे के प्रातःकाल ही से मेरी डोंगी ग़ायब है।"

राघवेंद्र—"हरामजादे! तूने ही ख़ून किया है।"

चमरू—"राम-राम! आप यह क्या कहते हैं? मालिक तो हम रैयतों के प्राणाधार थे—हमारी इज़्ज़त के एकमात्र

अवलंब। हमारा शरीर हमारे काम न आए, हमारे बाल-बच्चे स्वाहा हो जायँ, यदि सपने में कभी मालिक की बुराई सोची हो।"

चमरू की बातों में इतनी निष्कपटता, हृदय की स्वच्छता, स्वामिभक्ति और मन की दृढ़ता भरी थी कि राघवेंद्र बात आगे न बढ़ा सका, और बोल उठा—"चमरू! तुम्हारी डोंगी जब नहीं मिली, तो थाने में इत्तिला क्यों नहीं की ? तुम पर यह दूसरा जुर्म है। उस रात को तुम कहाँ थे ? दशहरे के दिन नरेंद्र से और तुमसे कहीं भेंट हुई थी या नहीं ?"

चमरू—"सरकार! दशहरे के दिन पत्थररेखा से क़रीब ६ बजे संध्या को मैं घर वापस आ रहा था। गाँव की सड़क पर उस वट-वृक्ष के सामने (हाथ से बतलाता हुआ) मालिक से भेंट हुई। वह मुझ पर बड़ी दया रखते थे। घाट की मालगुजारी एक पैसा भी किसी से नहीं लेते थे। घाट प्रकृति की देन है, और सबका इस पर समान रूप से हक़ है, ऐसा उनका विचार था। साहब-सलामत के बाद मैं घर चला आया। उस समय मालिक एक खद्दर का कुरता पहने थे। माथे पर गांधी टोपी लहरा रही थी। कमर से फुरहरी धोती लटक रही थी। काँधे पर मालवीय चादर थी। पाँवों में चट्टियाँ थीं, कलाई पर सुनहरी घड़ी, हाथ में मोटी छड़ी और मुख में पान के बीड़े। हरदेव बाबू के घर की ओर जा रहे थे। उस दिन मैं बहुत दुखी था। कारण,

दिन-भर जाल फेकने पर भी मुझे मछली प्राप्त न हुई थी। इसलिये भोजन कर, अपने दोनो जवान लड़कों को लेकर क़रीब आठ बजे रात को फिर नदी चला गया। उस समय पानी कुछ बढ़ रहा था। ईश्वर की दया से दो ही घंटे के भीतर हम लोगों के जाल में तीन बड़ी-बड़ी मछलियाँ फँसीं। ढोने-भर को मछलियाँ पाकर, हम लोग अपनी डोंगी एक बड़ी नाव में उलझाकर घर की ओर चल पड़े। तट से कुछ ही दूर गए थे कि डाकुओं की आवाज़ सुन पड़ी। मेरे दोनो लड़के मछलियाँ लिए दूसरी राह से भागे। बुढ़ापे के कारण मछली लादकर भागने में अपने को अशक्त जान, अपनी मछली वहीं पटककर मैं अपने लड़कों की ओर भागा। इसी भगदड़ के कारण मैं दूसरे दिन अस्वस्थ हो गया। बीमारी ने घर का आटा भी गीला कर दिया। उसका सर्वनाश हो गया।"

इतना बयान कर वह बड़े ज़ोर से रोने लगा।

दारोग़ा ने उससे अधिक चर्चा करना उचित न समझ यह अनुमान किया कि छ बजे शाम तक नरेंद्र जीवित था। वह हरदेव के घर की ओर जा रहा था। उसी तरफ़ दीर्घकाय का भी घर है। दीर्घकाय ने दशहरे के प्रातःकाल उसे जो बड़ी मछली दी थी, वह चमरू की मारी थी। दीर्घकाय चमरू की डोंगी के नष्ट होने की बात चलाकर उस बेचारे को हत्या में शामिल किया चाहता है। सबके सामने

चमरू पर नज़र रखने के लिये सिपाहियों को आदेश प्रदान कर राघवेंद्र ने उपस्थित मनुष्यों में से एक सौ नौ-जवानों को अलग किया। उन्हें दस दलों में विभक्त किया। एक-एक दल दो-दो चौकीदारों की अधीनता में रक्खा गया। प्रत्येक दल को लाश खोजने की आज्ञा दी गई। हरएक दल के आदमियों के साथ एक-एक कुदाली, खनती और कुल्हाड़ी थी। राघवेंद्र भी एक दल के साथ निकल पड़ा। रास्ते में इसे दो भिक्षुक मिले। अपने दल को आगे बढ़ने की आज्ञा देकर वह भिखारियों से बातें करने लगा। आधे घंटे की बातचीत के बाद शाम को आठ बजे उसी जगह मिलने की उन्हें आज्ञा दे वह अपनी पार्टी में मिल गया।

राघवेंद्र कभी ऊँची जमीन खुदवाता, कभी नदी की बालू टलवाता, कभी पत्थररेखा की चट्टान टलवाता, कभी चट्टानों की कंदरा में घुस ग़ौर से उसका कोना-कोना छान डालता। सारा दिन लाश की खोज में बीत गया, पर लाश-संबंधी कुछ भी बात मालूम न हुई। अंत में लाचार हो राघवेंद्र नरेंद्र की कचहरी लौट आया। सभी दल वापस आ चुके थे। प्रत्येक दल से निराशाजनक उत्तर पा दीर्घकाय, हरदेव और चमरू आदि पर पहरा बैठाकर राघवेंद्र बाहर निकल गया। गाँव से बाहर ठीक आठ बजे उन्हीं दो भिखारियों से इसकी भेंट हुई। तीनो एक साथ चुपचाप चलते हुए

पत्थररेखा के शांत तट पर आ पहुँचे। वहीं बैठकर धीरे-धीरे बातें करने लगे।

राघवेंद्र—"शालग्राम! आज मैंने भोजन भी नहीं किया। सारा दिन व्यर्थ बीता। थकावट और श्रम के अतिरिक्त कुछ भी हाथ न लगा। मुझे दृढ़ विश्वास है, इस हत्या में दीर्घकाय का पूरा हाथ है।"

शालग्राम—"हाँ, मेरा भी यही अनुमान है। घबराने से काम न चलेगा। पता चला है कि थाने में इत्तिला की खबर पा दीर्घकाय ने अपने विश्वासी नौकर धूम्रकेतु को गाँव से हटा दिया है। यह बात मुझे चार बजे एक चौदह वर्ष की भोली-भाली बालिका से ज्ञात हुई। मैं तुरत उसकी टोह में निकल पड़ा। नदपुरे से तीन मील पर स्थित एक गाँव में गया। मेरे वहाँ पहुँचने के पहले ही वह नदपुरे की ओर चल पड़ा था। वह इस वक़्त इसी गाँव में है। हत्याकांड की पूरी जानकारी रखता है। पर जब तक दीर्घकाय यहाँ रहेगा, आपको लाश का पता कुछ भी नहीं लग सकता।"

दारोग़ा—"तब मैं क्या करूँ? सबूत के बिना क़ानून की रू से मैं उसका चालान भी नहीं कर सकता। पुलिस-मैन्युअल के अनुसार किसी पर ज्यादती भी नहीं कर सकता।"

शालग्राम—"मेरी बात पर विश्वास करके कल प्रातः आप दीर्घकाय का उसके बेटों के साथ चालान कर दें। लाश का पता कल अवश्य लग जायगा।"

विष्णुदत्त—"हाँ हुज़ूर! बात यही है। मैंने भी यही पता पाया है। आज रात-भर शालग्राम के साथ मैं उसी नौकर के घर के चारो ओर चक्कर लगाऊँगा। भूत की भाँति उसका पीछा करूँगा।"

दारोग़ा—"भाई! बड़े उत्तरदायित्व का काम है। ख़ून के मुक़दमे में चश्मदीद गवाह चाहिए। अभी तो नरेंद्र मारा गया या नहीं, इसी में संदेह है। शुबहा की गुंजाइश नहीं। वह मारा गया, यह बात गाँववाले सभी जानते हैं। इस गाँव का चौकीदार भी जानता है। छोटे-बड़े, सभी इस बात से वाक़िफ़ हैं। पर दीर्घकाय के डर से कोई ज़बान भी न हिलाएगा।"

  

प्रातःकाल होते ही राघवेंद्र ने दीर्घकाय, उसके दोनो बेटों, भांजे और भतीजे का चालान कर दिया। सारे गाँव में आतंक छा गया। ठीक साढ़े सात बजे अपने दल के साथ लाश की खोज में निकल पड़ा। डोंगियों पर सवार हो सभी नदी पार हुए, और जंगल में लाश की खोज जारी हुई। दौड़-धूप में दोपहर हो गई। दोनो भिक्षुकों का अभी तक कोई पता नहीं। लाश का बिना पता पाए दीर्घकाय वग़ैरा का चालान करने की वजह से राघवेंद्र के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। माथे पर चिंता की चिनगारियाँ चिटक रही थीं। पुलिस साहब, इंस्पेक्टर

आदि के आगमन की आशंका और लाश का अब तक पता न मिलना रह-रहकर उसे क्षोभ में डाल देता था! वह चारो दिशाओं में नजर दौड़ाता, पर कहीं भी छद्मवेशधारी भिक्षुक नजर न आते। जंगल के एक गड्ढे में पाँव रख ही रहा था कि सामने एक काले, बदसूरत, नाटे, मोटे आदमी को लिए दोनो भिक्षुकराज पहुँच गए। अपने आदमियों को वहीं बैठने का आदेश देकर दारोग़ाजी नवागंतुकों को लिए वृक्षों के एक झुरमुट में पहुँच गए, और लगे पीटने उस काले आदमी को। कड़ाके के साथ दस या ग्यारह हंटर धूम्रकेतु की पीठ, सिर, हाथ और मुँह पर पड़े ही थे कि वह हाथ जोड़ चिल्ला उठा—"दुहाई दारोग़ाजी की! जी-जान बख्श दीजिए। जो पूछेंगे, मैं बताऊँगा।"

दारोग़ा—"नरेंद्र की लाश कहाँ गड़ी है? शीघ्र बता, नहीं तो तेरी हड्डियाँ चूर-चूर कर इसी नदी में डाल दूँगा।"

धूम्रकेतु—"चलिए, मैं बताए देता हूँ।"

दारोग़ा ने संकेत से अपने आदमियों को पीछे-पीछे चलने का हुक्म दिया। धूम्रकेतु आगे-आगे चला। छाया की भाँति उसके पीछे दोनो जासूस और दारोग़ाजी चले। सभी मनुष्य दौड़ते हुए दारोग़ाजी के पीछे हो लिए। चलते-चलते धूम्रकेतु एक विकट वनस्थली में प्रविष्ट हुआ। बड़े-बड़े वृक्ष अपने पत्तों से आकाश चूम रहे थे। उन पर लहराती लताएँ और झुरमुट वन-मार्ग को रोके खड़े थे। ऊपर से

चंडांशु की किरणें मानव की दुष्टता से क्रुद्ध हो आग उगल रही थीं। भीतर जठरानल का प्रकोप बढ़ता चला जा रहा था। हृदय के भीतर मानव की काली करतूतों की छवि अंकित हो रही थी। मस्तिष्क क्या होगा—इसी की कल्पना में मस्त था। इसी बीच में झर-झर निनाद करता हुआ एक सोता मंद-मंद गति से प्रवाहित होते नजर आया। उसके दोनो तट सौ-सौ फ़ीट ऊँचे थे। तटों पर काँटेदार झाड़ियों से परिवेष्टित वृक्ष मानव की काली करतूतों को देखने की इच्छा न रख आकाश के प्रकाशमय तारों से ही प्रेरणा पाने के लिये ऊपर ताक रहे थे। सभी आदमी काँटों से क्षत-विक्षत हो जाने के कारण यही सोच रहे थे कि देखें, यह दुष्ट अब किस कष्ट में सबको डालता है।

तट से सोते में उतरने का रास्ता बड़ा विकट था। धीरे-धीरे अपने को सँभालते हुए लोग नीचे उतरने लगे। पर राघवेंद्र और दोनो जासूस जान जोखिम में डालकर बड़ी फ़ुर्ती से धूम्रकेतु के साथ सोते में उतर गए। सोते के पार्श्व में स्थित एक स्थल पर पहुँच धूम्रकेतु सहसा खड़ा हो गया, और दारोग़ाजी से कुदाली माँगी। वचनशूर के हाथ से कुदाली ले दारोग़ा ने धूम्रकेतु को दी। उसने वह जगह खोदनी शुरू की। एक घंटे बाद लाश मिली। गड्ढे के चारों ओर पिटारी की पटरियाँ बालू रोकने के लिये गड़ी थीं। उन्हीं पटरियों के बीच लाश चित रक्खी

थी। जंगबहादुर और वचनशूर ने लाश की पहचान की। गाँववालों ने तसदीक़ की।

लाश की जीभ निकली हुई थी। गला दबा हुआ था। आँखें निकली हुई थीं। बायाँ पाँव आधा कटा हुआ था। गाड़ने के समय पाँव नहीं अँटते थे, इसलिये कुदाली से काटकर मरोड़ दिए गए थे। लाश के सिरहाने नरेंद्र की चादर रक्खी थी। गले में यज्ञोपवीत की पावन माला पड़ी थी। कमर से नैनसुख की धोती लटक रही थी। उसके अन्य परि-धेय वस्त्र हटा दिए गए थे। लाश को देखकर वचनशूर का सारा पुत्रत्व फूट पड़ा। अपने को न सँभाल सका। हृदय के शोकोच्छ्वास आँखों में आँसू बन गए, और चित्त की व्याकुलता ने तेज़ी से निकलते स्वरों को रोदन का रूप दिया। वह क्रंदन करुणा से भरा और प्रस्तर-हृदय को भी द्रवीभूत करनेवाला था।

सारा समाज मानव की निर्दयता, उसके हृदय की कठो-रता की कल्पना कर काँप उठा, और वचनशूर के स्वर में अपना स्वर मिलाकर रोने लगा। कर्तव्य-परायण राघवेंद्र की आँखों से भी मटर की-सी बूँदें टपकने लगीं। गुरुतर कर्तव्य का भार अपने निर्बल कंधों पर वहन करता हुआ वह समय की गुरुता न भूल सका। नदी के किनारे से चार लकड़ियाँ कटवाकर, उन पर गट्टे की पटरियों को रख एक ढोंने की खाट तैयार कर ली, और उस पर लाश रखवा दारोग़ा

ने उसे रामपुर-सदर अस्पताल में पोस्टमारटेम के लिये भेजा। धूम्रकेतु का बयान ले उसे नदपुरा ले आया। धूम्रकेतु की सहायता से नदपुरे में नरेंद्र के जूते, छड़ी, टोपी बरामद की। ये दीर्घकाय के घर के दक्षिणी बाग़ में गड्ढे में गाड़े गए थे। गड्ढे के ऊपर गोबर और घास-पात रक्खे थे। वहीं वह कुदारी भी रक्खी थी, जिसके सहारे जंगल के सोते के पार्श्व में नरेंद्र की समाधि बनाई गई थी।

---

[७]

दीर्घकाय अपने साथियों के साथ रामपुर के जेल में पड़ा है। वह चिंता के मारे मरा जा रहा है। उसके मानस-नद में रह-रहकर चिंता की लहरें उठतीं और विलीन हो जाती हैं। कभी वह सूली का स्वप्न देखता है, तो कभी स्वच्छंद, निर्मल और निर्बाध वायुमंडल का। अपने कृत्यों पर ध्यान जाते ही उसके रोंगटे खड़े हो जाते हैं, अंग शिथिल और मन भीरू। धूम्र-सा बुद्ध, अकुशल और अनुभव-शून्य व्यक्ति पुलिस के हाथ में पड़ भंडा फोड़ देगा, सारी बातें खोल देगा, और लाश का पता बता देगा। आह! लाश का पता लग जाना मेरे और मेरे साथियों के प्राणों का ग्राहक होगा। काश मैं नदपुरे में इस समय रहता।

दीर्घकाय को राघवेंद्र पर पूरा विश्वास था। राघव उसका अनिष्ट सोचेगा, उसे इसका ख़याल स्वप्न में भी न था। कई बार उसने सच्चे दिल से राघव की सेवा की थी। मछली, खस्सी, चावल, दही आदि देने में कभी संकोच न किया था। दूसरों के मुक़दमों में भी वह राघव के काम आता था। थोड़े ही दिन पूर्व विष्णुपुर के बाबू ने जब कालीचरण लोहार की जान बंदूक़ से ली थी, उसने इन्हीं हाथों से बाबू साहब

की ओर से डेढ़ हज़ार की थैली राघव के चरणों पर रक्खी थी। मेरी पैरवी से बाबू साहब बाल-बाल बच गए। राघव की बन आई, और मेरी धाक जमी रही।

आज सभी बातें उलटी नज़र आती हैं। मनुष्य सब कुछ भूल सकता है, पर कृतज्ञता स्मरण रखता है। कृतज्ञता मनुष्यता की माप है। यही मनुष्य को पशुत्व से ऊपर उठाती और दिव्य गुणों का अधिकारी बनाती है। इसी दिव्य गुण के सहारे जगत् का व्यवहार चलता है। पुत्र, माता, पिता और गुरुजन के उपकारों को स्मरण कर अपना जीवन उनकी सेवा-वेदी पर न्यस्त कर देता है। सैनिक केवल चाँदी के चंद टुकड़ों से किए गए उपकार को ध्यान में रख रणाग्नि में अपने प्राणों की आहुति निःसंकोच देता है। पर राघवेंद्र, तुम इतनी जल्दी दीर्घकाय को भूल गए। तुम्हें थोड़ी भी दया न आई। चालान कर ही दिया।

इन विचारों में निमग्न दीर्घकाय ने ज्यों ही अपनी आँखें खोलीं, उसने एक सिपाही को धूम्रकेतु को एक कोठरी में बंद करने के लिये ले जाते देखा। वह हक्का-बक्का हो गया। चाहा कि उससे मिलें, पर जेल के सिपाहियों ने उसे रोका।

शाम को ६ बज रहे थे। हवलदार दीर्घकाय की कोठरी के समीप होकर जा रहा था। वह दौड़कर हवलदार के चरणों पर गिर पड़ा।

हवलदार—"बदमाश ! हट, हट। क्यों पाँवों पर पड़ता

है ? तूने ऐसा घोर पाप किया है कि नरक में भी तेरे लिये स्थान नहीं। तेरे शरीर के स्पर्श से मेरा शरीर भी नापाक हो गया।"

दीर्घकाय—"दुहाई हवलदार साहब की! मुझ पर कृपा करें, मैं निर्दोष हूँ।"

हवलदार—"पाजी! चुप रह। सत्तर चूहे खाकर बिल्ली चली हज को। तेरा चाचा वह चमार आज गिरफ्तार होकर यहाँ आ गया है। उसके इजहार से आटे-दाल का भाव मालूम होगा।"

दीर्घकाय—"क्या दीनों पर दया करना, पतितों का उद्धार करना, निर्बलों को आश्रय देना सामर्थ्यशीलों का कर्तव्य नहीं है। अजामिल-से पथभ्रष्ट को, गणिका-सी पतिता को, वाल्मीकि-से डाकू को भगवान् ने अपना लिया, तो क्या सामर्थ्य रखते हुए आप मुझे शरण न देंगे ?"

हवलदार—"शरण और आश्रय की बात ताख पर रख। हम लोग यमलोक के सरदार हैं। बदमाशों को ठीक करना, अपना हाथ गर्माना, अफ़सरों की नजर में ईमानदार बना रहना हम लोगों के कर्तव्य हैं। यहाँ किसी से भेंट तभी हो सकती है, जब हमारी मुट्ठी भरती है।"

दीर्घकाय—"मैं तैयार हूँ आपकी ख़िदमत के लिये। कल मेरी लड़की का ससुर मारडीह से सौ रुपए लिए आवेंगे। मैं आपको २५) दिला दूँगा। मुझे धूम्रकेतु से मिला दें।"

हवलदार—"यहाँ रुपए लेने के बाद काम होता है। ज़बानी जमा-ख़र्च से यहाँ काम सधने का नहीं।"

दीर्घकाय—"मैं तो आपके अधीन हूँ। आप जिस तरह चाहें, मेरे साथ पेश आ सकते हैं। विश्वास ही पर दुनिया चलती है। एक दिन का समय कोई बड़ा युग नहीं। कल प्रातः ही तो वह आते हैं। यदि मैं न दूँ, तो आप धूम्रकेतु को उलटा-सीधा समझाकर मेरा अनिष्ट कर सकते हैं।"

हवलदार—"तू पुराने ज़माने की बात कर रहा है। अब जेल के नए क़ानून के अनुसार हम लोग क़ैदी को किसी प्रकार तंग नहीं कर सकते। पर तेरी दशा पर मुझे दया आती है। भोजनालय में सात बजे जब वह आवे, अपना काम साध लेना। पर याद रहे कि वादा पूरा हो।"

❀ ❀ ❀

आज रामपुर के एस्० डी० ओ० पी० सी० चौधरी की कचहरी में ख़ासी भीड़ है। सैकड़ों की संख्या में आदमी इकट्ठे हैं। दारोग़ा राघवेंद्र सशंक इधर-उधर दौड़धूप लगा रहा है। पुलिस-इंस्पेक्टर भी मौजूद हैं। वचन-शूर और जंगबहादुर भी चिंता में डूबे कचहरी के सामने खड़े हैं। धूम्रकेतु इजलास में पुलिस द्वारा उपस्थित किया गया। इजलास से सभी हटा दिए गए। किवाड़ बंद कर दिए गए। केवल मजिस्ट्रेट और धूम्रकेतु रह गए।

मजिस्ट्रेट—"तुम्हारा नाम ?"

क़ैदी—"धूम्रकेतु।"

मजिस्ट्रेट—"देखो, आज मेरे सामने जो बयान करोगे, उसी पर तुम्हारा इस लोक में जीना और मरना निर्भर है। ख़ूब सोच-समझकर होश के साथ इज़हार करना। स्मरण रक्खो, यह धर्म और न्याय का स्थान है। सच्ची बातें कहने में संकोच न करना।"

धूम्रकेतु—"सरकार! यह जीवन क्षण-भंगुर है। कोई आज मरता है, कोई कल। इस चंदरोज़ा ज़िंदगी के लिये मैं झूठ कभी नहीं बोलूँगा। मैं सच कहूँगा, चाहे इसके लिये फाँसी क्यों न हो। नरेंद्रसिंह-सा धन-जन-संपन्न, विद्या-बुद्धि में बढ़ा-चढ़ा आदमी जब संसार में न रहा, तो मेरी हस्ती ही क्या।"

मजिस्ट्रेट—"यहाँ फ़िज़ूल बातें करना ठीक नहीं। नरेंद्र-सिंह के ख़ून के मुतअल्लिक़ क्या जानते हो, बोलो।"

धूम्रकेतु—"ग़रीबपरवर! दशहरे की रात को लगभग दस बजे मैं बिस्तरे पर पड़ा था। मेरे मालिक दीर्घकाय ने द्वार पर आकर आवाज़ दी। मैं बाहर आया। वह मुझे अपने साथ घर ले आए। घर के अंदर मुझे लाकर मेरे पाँवों पर गिर पड़े, और रोने लगे। मैं पाँवों को सहसा खींच कर बोल उठा—'ऐसा अन्याय क्यों ?' दीर्घकाय ने कहा—'यदि तुम मेरी सहायता इस समय न करोगे, तो मैं कहीं का न

रहूँगा।' मैंने बिना विचारे कहा—'मैं तो आपका गुलाम हूँ। जो चाहें, करा लें।' इस पर मुझ से शपथ लेकर वह मुझे अपने घर के भीतर ले गए, और चादर से ढकी एक लाश दिखाई। वह नरेंद्रसिंह की लाश थी। मैं घबरा गया, और नरेंद्र बाबू की अवस्था देख भागना चाहा, पर दीर्घकाय ने हाथ पकड़कर कहा—'अगर पैर आगे बढ़ाओगे, और यह बात कहीं फूटी, तो तुम्हें भी गला दबा-कर मार डालूँगा।' मैंने कोयरी की देवता की भाँति निश्चेष्ट होकर उनकी सहायता करने का वचन दिया। मुझे वहीं बिठा दिया, और बाहर से अपने बेटे गुलाम और दिलबहार तथा भांजा किन्नर और भतीजे विजय को ले आए। देवदार की एक पिटारी पहले ही से बनी वहाँ रक्खी थी। उसी में उन पाँचों ने मुर्दे को रक्खा। मुझे एक बुझी लालटैन और कुदाली दी। दीर्घकाय लट्ठ लिए आगे हो लिए। उन चारों ने पिटारी उठाई, और मैं पिटारी के पीछे कुदाली और लालटैन लिए चला। क़रीब ग्यारह का वक़्त था। घना अंधकार छाया था। चारो ओर सन्नाटा था। हम लोग नदी के किनारे पहुँचने ही पर थे कि उधर से चमरू धीवर अपने दोनो लड़कों के साथ एक-एक वज़नदार मछली लिए चला आ रहा था। दीर्घकाय ने हम लोगों को रास्ते से कुछ दूर हटने का इशारा किया, और बड़े ज़ोरों से गर्जन किया 'ठहर जा!' उसके शब्द सुनते

ही धीवर नौ-दो-ग्यारह हो गए। चमरू भी मछली वहीं पटक, जान लेकर भागा। उसी की डोंगी पर सवार हो हम लोग नदी पार हुए। नदी के उस पारवाले जंगल के बीच एक सोते में शव गाड़ दिया गया। दिलबहार चमरू की डोंगी पर चढ़कर उसे न-जाने कहाँ ले गया। नरेंद्र के अन्य वस्त्र, जूते और लाठी अपने घर के समीप एक गड्ढे में गाड़ दिए। दूसरे दिन मैंने दीर्घकाय के साथ चमरू की मछली दारोगाजी के यहाँ पहुँचाई।"

मजिस्ट्रेट—"तुम्हें मालूम हुआ कि नरेंद्र कैसे मारा गया?"

धूम्रकेतु—"हाँ, मैंने पूछा था। मालिक, दीर्घकाय के मुँह से मुझे ज्ञात हुआ कि सात बजे रात को इनके यहाँ नरेंद्रसिंह मिलने आए थे। दीर्घकाय की दुमुँही में बिछी चौकी पर बैठे थे। दीर्घकाय ने पान देने के बहाने नरेंद्र को चौकी पर गिरा दिया। दिलबहार और विजय ने ज़ोर से पाँव पकड़े, और विजय तथा किन्नर ने हाथ। दीर्घकाय ने नरेंद्र के मुँह में कपड़ा डालकर इस प्रकार गला दबा दिया कि एक मिनट में उनके प्राण निकल गए।"

मजिस्टेट—"हत्या के समय तुम थे?"

धूम्रकेतु—"नहीं।"

---

[८]

कुँवार और कार्त्तिक के महीने गृहस्थों के लिये बड़े कष्टकर होते हैं। खासकर वर्षा की अधिकता के कारण भदई फ़सल चौपट हो जाती है, और धान रोपने तथा गृहस्थी-कार्य में सारे बचाए अन्न ख़त्म हो जाते हैं। देहाती किसान दाने-दाने को मुहताज हो जाते हैं। यही समय मालगुज़ारी भरने और कपड़ा आदि ख़रीदने का भी है। चैती फ़सल के बीज इसी समय बोए जाते हैं। ज़मीन की रुखाई के कारण बैल भी तबाह हो जाते हैं। गेहूँ, बूट, जौ आदि के बीजों के लिये किसान चिंतित रहता है। वह बीज या तो रुपए ऋण लेकर ख़रीदता है, या डेढ़िए पर उधार लेता है। एक मन गेहूँ के लिये चैत में उसे डेढ़ मन देना पड़ता है। सिर पर नाज उठाकर लाता है, और पैदा होने पर सिर ही पर उसे लाद महाजन के घर पहुँचाता है। यदि दैव - प्रकोप से वृष्टि न हुई, या फ़सल मारी गई, तो दूसरे वर्ष उसे एक मन के लिये ढाई मन देने पड़ते हैं। सैकड़ों दरिद्र किसान इस लेन-देन के झमेले में पड़कर, कड़ी धूप में लहू सुखाकर भी न भर-पेट अन्न पा सकते हैं, और न काफ़ी कपड़े।

चमरू इसी कोटि का किसान है। वह सिर तोड़ बच्चों के

साथ कड़ी मेहनत करता है, पर कभी उसे सुख के दिन नज़र न आए। जाति-वृत्ति के सहारे मछलियाँ बेचकर वह किसी प्रकार दाल-रोटी का सवाल सुलझाता था। पर दैव से यह भी न सहा गया। डोंगी के अभाव में मछली मारे, तो कैसे? अपनी स्त्री और पतोहुओं को चिथड़े लपेटे देख उसका कलेजा टूक-टूक हो जाता था। वह मन-ही-मन रो उठता। पंद्रह-बीस दिन से बेकार बैठे रहने के कारण उसकी तंदुरुस्ती बिगड़ गई थी। हल-बैल भी अधिक न थे कि वह खेती में भाग लेता। बुड्ढा हो जाने के कारण कोई उसे हल जोतने में भी न रखता था। गाँव में भी कोई ऐसा भला मनुष्य न रहा, जो उसके ऐसे दरिद्र पर दया-दृष्टि प्रदर्शित करता। एक नरेंद्र ही था, जो सबों की इज़्ज़त करता था। पर क्रूर दैव ने उसे भी उठा लिया। इस प्रकार की चिंता-धारा में अपने मन को बहाता हुआ चमरू पत्थर-रेखा की ओर जा रहा था कि पीछे से दौड़ती हुई धीवरी आई।

धीवरी—"लौटो, घर चलो। थाने से एक सिपाही आया है। बड़ा रोब गाँठ रहा है। न-जाने अब और क्या होने-वाला है?"

चमरू—"क्या चाहता है? क्या मेरा भी चालान करेगा? जब जीविका ही चली गई, तो पापी प्राण रखकर क्या होगा?"

धीवरी—"शीघ्रता से चलो। कहीं वह दुष्ट मार न दे। लाल-लाल आँखें दिखा रहा था। ये दानव गाली ही के मुख से बोलते हैं। क्या इनकी ज़बान पर मीठी और नम्र बातें आती ही नहीं ?"

चमरू—"प्रिये ! ये तो पहले दर्जे के ख़ुशामदी होते हैं। अपने से बड़ों के सामने हाथ जोड़े खड़े रहते हैं। सभी प्रकार के चापलूस शब्दों का प्रयोग करते हैं। पर हम ग़रीबों के लिये इनके दिल में रहम नहीं। हमारे लिये तो इनके मुँह से अपशब्द ही निकलते हैं।"

धीवरी—"देखो, इसी तरफ़ झूमता हुआ चला आ रहा है।"

चमरू—"पहुँच ही तो गया। आ, जान बाक़ी है, ले ले।"

सिपाही—"तुम्हारा ही नाम चमरू धीवर है ?"

चमरू—(खाँसता हुआ) "हाँ हुज़ूर !"

सिपाही—"दारोग़ाजी ने तुम्हें याद किया है।"

दारोग़ा का नाम सुनते ही चमरू का कलेजा धक्-धक् करने लगा। वह सोच रहा था, क्या ही अच्छा होता, अगर मेरे हृदय का चलना बंद हो जाता, और जीवन के बखेड़े शांत हो जाते। वह आँखें बंद किए यह सोच ही रहा था कि सिपाही ने कड़ककर कहा—"हरामज़ादे ! देर क्यों कर रहा है। चल, दामाद तुम्हारा बाट जोह रहा है।"

  

थाने में जगदानंद, मंज़ूररसूल और दीनबंधु कुर्सियों पर बैठे हैं। नदपुरे की सनसनीख़ेज घटना ही उनकी बातचीत का विषय है। चमरू धीवर की डोंगी का इतिहास भी उन्हें मालूम हो गया है। उसके सीधेपन तथा दयनीय दशा की तस्वीर भी राघवेंद्र ने उनके सामने खड़ी कर दी है।

सबकी यह राय पक्की हो गई है कि मछली की ख़रीद-फ़रोख्त (क्रय-विक्रय) का एक डीपो रामपुर में खोला जाय। मछली की बिक्री होगी, साथ ही जीभ को स्वाद भी मिलेगा। पैसे की भी प्राप्ति होगी। राघवेंद्र ने पत्थररेखा और उसके आस-पास के तालाबों को मछली के लिये बहुत उपयुक्त समझा है। उनका निजी अभिप्राय है कि चमरू भी अगर इस डीपो का एक हिस्सेदार हो जायगा, तो डीपो का काम बड़ी आसानी से चलेगा, और क़ाफी नफ़ा भी होगा।

राघवेंद्र में मनुष्य परखने की अद्भुत शक्ति थी। जिसे वह एक बार देख लेता, और उससे बातें कर लेता, उसके संबंध में अपना विचार स्थिर करने में उसे देर न लगती। बातचीत के सिलसिले में यह बात भी तय हो चुकी थी कि मंज़ूररसूल डीपो के मैनेजर, जगदानंद सेक्रेटरी और दीन-बंधु कोषाध्यक्ष रहेंगे। दारोग़ा राघव का हिस्सा गुप्त रूप से रहेगा। जगदानंद ने मल्लुआटोलीवाला अपना पुराना मकान डीपो के कार्य-संचालन के लिये देने का वचन दिया।

था। बड़े-बड़े मंसूबे बाँधे जा रहे थे। आमदनी का हिसाब लगाया जा रहा था। पर इस खयाली महल का अस्तित्व चमरू-से धीवर की तत्परता और स्वीकृति पर निर्भर था। चमरू की साधुता और निष्कपटता पर राघवेंद्र को पूरा विश्वास था। वह यह भी जानता था कि चमरू की आर्थिक स्थिति ऐसी कष्टप्रद है कि वह इस ऑफर (offer) से इनकार न करेगा। अतः अपने विश्वासी सिपाही पदार्थसिंह को चमरू को बुला लाने के लिये नदपुरा भेजा था।

पुलिसवालों की चाल टेढ़ी होती है। सिपाही जिस रोब से चमरू के साथ पेश आया, वह देख चमरू काँप उठा। उसके पकड़े जाने की खबर जब उसके बेटों और अन्य संबंधियों को मिली, तब सभी घोर चिंता में पड़ गए। धीवरी और उसकी पतोहू फूट-फूटकर रोने लगी। उसके यहाँ चूल्हा न जला। सबके लिये वह दिन एकादशी रहा। घर में और कुछ तो था नहीं, थोड़ी-सी मकाई थी, वही भूजी जाती, पर दारोगा के नादिरशाही हुक्म ने भूख-प्यास को हृदय से हटाकर वहाँ करुणा, व्यथा और संताप की नदी बहा दी थी।

धीवरी ने चित्त की व्याकुलता में स्नान किया, और भीगी, फटी साड़ी पहने सूर्यनारायण को अर्घ्य दे रही थी। बार-बार अंचल फैलाकर भगवान् की प्रार्थना कर रही थी कि मेरा पति यमराज के हाथों से छुट पुनः घर लौटे। उसने न-जाने

कितने देव और देवियों को गुहराया, क्या-क्या मनौती की, कैसे-कैसे उनकी पूजा करने के मंसूबे बाँधे, यह वही समझ सकता है, जिसे किसी भी मलिन-वस्त्रा, विशुद्ध-हृदया, पतिपरायणा, देहाती रमणी के व्यथित हृदय की झाँकी मिली हो।

उसकी छोटी पतोहू कमोदवा ओझे से बहुत हिली-मिली रहती थी। एक दूसरे को आँखें बचाकर देखता था। सीतवा ओझा बहुधा एक-न-एक काम लेकर चमरू के यहाँ आया-जाया करता था। घरवाले साधारणतः और चमरू विशेषतः अपने यहाँ सीतवा का आना-जाना पसंद नहीं करता था। कई बार उसने कमोदवा को डाँटा, और धमकाया भी था।

आपत्ति-काल में मनुष्य भेद-भाव भूल जाता है। ईर्ष्या, द्वेष और शत्रुता की आग बुझ जाती है। मनुष्य मनुष्य से प्रेम करने के लिये उतावला हो जाता है। आत्मा आत्मा में बंधुत्व स्थापित करने की शुभ कामना करती है। अतः इस बार जब कमोदवा सीतवा को अपने घर बुला लाई, घर में किसी को कष्ट न हुआ। सीतवा चमरू के परिवार के दुःख में समवेदना प्रकट करने लगा। सबको ढाढ़स बँधाया। उसने जमीन पर क्रास लकीर खींची। उसमें चार गोटियाँ रक्खीं। इसके बाद आँखें बंद कर कुछ देर तक गुनगुनाया। तब धीवरी को एक तिनका देकर कहा—"मा! किसी घर में तिनका रख दो।"

धीवरी, जो कुछ ही क्षण शोक और पति-वियोग की वेदना से कातर हो रही थी, सीतवा की युक्ति से कुछ शांति पाने लगी। उसे प्रेम की दृष्टि से देखने लगी। लकीर के बने घर में उसने तिनका रक्खा। सीतवा हँसकर बोल उठा—"चमरू बाबा .खुशी-खुशी थाने से लौटेंगे। यदि मेरी बात सच न निकले, तो मुझे पचास जूते मारना।" यह सुन धीवरी को आश्वासन हुआ।

मनोविज्ञान का सिद्धांत है कि जब चित्त किसी बात पर क्षुब्ध हो उठे, तो उसे दूसरी वस्तु पर कौशल से निक्षिप्त करना चाहिए। किसी विशिष्ट स्रोत में प्रवाहित मन की प्रगति को अवरुद्ध करने की यह युक्ति अलौकिक और लाभ-प्रद है।

स्कूल के अध्यापक इसी युक्ति के सहारे स्वयं आवाज़ कर कलरव करते हुए छात्रों का ध्यान दूसरी ओर आकर्षित करते हैं। शोर मचाते हुए सैनिक बिगुल का निनाद सुनते ही शांत और सावधान हो जाते हैं। पितृशोक में विह्वल पुत्र अंत्येष्टि-क्रिया के फेर में पड़ सारा शोक भूल जाता है। ऐसे ही धीवरी भी सीतवा की युक्ति से कुछ क्षण के लिये अपना दुःख भूल गई।

संध्या हो रही थी। धीवरी टकटकी लगाए रामपुर की ओर ताक रही थी। आँखों से अनवरत अश्रु-प्रवाह जारी था। वे फूलकर बड़ी-बड़ी हो गई थीं। देखने की शक्ति भी धुँधली

हो गई थी। इसी बीच में उसका छोटा लड़का फूलेना दौड़ता आया, और बोला—"मा! दादा आ गए। उन्हें राम-पुर में दस रुपए महीने की एक नौकरी मिली है। दारोग़ा साहब ने हम लोगों की दशा पर तरस खा यह जीविका लगा दी है।"

धीवरी को यह विश्वास नहीं हुआ कि दारोग़ा के हृदय में भी दया रहती है। वह भी दूसरों के दुःखों से पसीजता है। वह भी दूसरों का उपकार करने की इच्छा करता है। उसके भी हृदय है। वह भी ग़रीबों पर निगाह डालता है। देहात का बड़ा हिस्सा पुलिस को भय और घृणा की दृष्टि से देखता है। ख़ुद पुलिस एक अच्छी संस्था है। इसका उद्देश्य देहातों में शांति-स्थापित करना, बलवा रोकना, चोर-डाकुओं का दमन करना, निर्बलों को सबलों के हाथों से बचाना, सबसे भाई-चारे का संबंध रखना है। पर पुलिस के अनेक कर्मचारियों के भद्दे आचरणों के कारण यह लोक-कल्याण-विधायिनी संस्था दूषित और घृणित समझी जाती है।

  

सीतवा के मार्ग में धीवरी और चमरू दो ही काँटे थे। चमरू तो एक घंटा रात रहते कलट्टू और फूलेना के साथ पत्थररेखा के घाटों पर चला जाता। वहाँ मछलियाँ ख़रीदता और तीनो उन मछलियों को दो-तीन और मज़दूरों के साथ राम-

पुर ले जाते। ढोने की मजदूरी के अलावा कलटू और फूलेना को महीने में और छ-छ रुपए मिलते थे। डीपो में ये मछलियों की बिक्री करते थे। कलटू की पत्नी मैनी धनखेत चली जाती। कमोदवा सिर में दर्द का बहाना कर घर में पड़ी रहती। धीवरी एक पहर दिन चढ़ते स्वामी और पुत्रों के लिये कलेवा लेकर रामपुर चली जाती थी। इसी बीच में सीतवा आता।

सीतवा को देख कमोदवा खिल उठती। उसकी सारी शिरोवेदना ग़ायब हो जाती। दोनो हँस-हँसकर बातें करते, और एक-दो घंटे गप्प में बिता डालते। सीतवा कभी कमोदवा के लिये मिठाई लाता, तो कभी लकठो और कभी पूए। सीतवा घर का सुखी था। उसके दो बेटे थे और एक बेटी। स्त्री से उससे नहीं पटती थी। उसकी स्त्री स्थूल-शरीर, साँवले रंग और मँझोले क़द की थी। चेहरे पर चेचक के दाग़ थे। पर घर के काम-काज में चालाक थी। खेती-गृहस्थी वही सँभालती थी। वह सीतवा के आचरण से सदा असंतुष्ट रहती थी। सीतवा पहले दर्जे का शैतान था। एक वर्ष पहले उसने एक ब्राह्मण-विधवा को शाबर-मंत्र के जाल में फँसा उसे ख़राब कर दिया था। उसके पेट में हमेशा दर्द रहता। सीतवा की ओझाई से ही वह दर्द मिटता। अंत में सीतवा की ओझाई और संबंध ने पेट में गर्भ का दर्द पैदा कर दिया। ब्राह्मण-समाज उस विधवा के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ। वह घर से

निकाल दी गई। इस दुष्ट ने उसे अपने साथ रखने से इनकार किया। मुसलमानों की बन आई, और वह बेचारी इस्लाम की कट्टर पक्षपातिनी हो गई।

सीतवा की स्त्री बत्तसिया यह बात जानती थी। उसे यह भी मालूम था कि इन दिनों सीतवा कमोदवा के पीछे पड़ा हुआ है। सीतवा जाति का दुःसाध था। प्रेम को वह खेल समझता था। वासना की तृप्ति के लिये वह प्रेम करता था। वासना की पूर्ति होते ही उसे वह लात मारता था। पर प्रेम एक स्वर्गीय वस्तु है। यह दो हृदयों को एक करने का सूत्र है। इसमें वासना का गौण स्थान है। प्रेमी का दुःख प्रेमिका का दुःख है, और प्रेमिका का सुख प्रेमी का सुख। इसमें स्वार्थ का तो कोई स्थान ही नहीं है। प्रेम परमार्थ है। हृदय की सर्वोत्कृष्ट निधि है। सीतवा इस प्रेम का जानकार नहीं था। वह कमोदवा का सहवास पसंद करता था, पर उसे खुले आम नहीं रख सकता था। वह इतना मनचला था कि अपने को रोक नहीं सकता था।

जब हृदय एक की ओर झुक जाता है, तो दूसरे की ओर से उसमें विरक्ति उत्पन्न हो जाती है। कमोदवा एक भोली-भाली, हँसमुख, गेहुवें रंग की पतली रमणी है। इसे संसार का बहुत कम ज्ञान है। यह धूर्तों के हृदय की पहचान करने में असमर्थ है। मनचले, फ़रेबी मनुष्य के मोह को प्रणय समझ लेती है, और अपने जीवन-पतंग को उस

मोहानल पर न्यौछावर करने में संकोच नहीं करती। उसे फूलेना के प्रति घृणा हो गई। उसकी बातें उसे नहीं भातीं। उसकी सेवा-शुश्रूषा में उसका दिल नहीं लगता। फूलेना स्वभाव से परिश्रमी है। वह धीर और गंभीर है। दूसरों में दोष देखना उसे नहीं आता। बाप की भाँति काम में लगा रहता है। अपने बाप का सच्चा बेटा और उसकी आज्ञा का पालन मन से करता है। फूलेना को कलट्टू से बड़ा प्रेम है। वह उसकी इज्जत करता है, और कलट्टू भी फूलेना को प्राणों से भी अधिक प्यार करता है। पर इधर दोनो भाइयों के हृदय में कई दिनों से कमोदवा के प्रति द्वेष, घृणा और वेदना की अग्नि जल रही थी। दोनो कमोदवा के चरित्र पर कुढ़ते और अपने अदृष्ट को कोसते थे। कलट्टू ने चमरू से एक दिन कह भी दिया—"दादा! कमोदवा निकम्मी औरत है। अच्छा होता कि इसे हम लोग छोड़ देते, और फूलेना के लिये एक दूसरी स्त्री खोजते।" चमरू ने कलट्टू की बात सुनी अनसुनी कर दी। वह स्वयं अपने घर का भंडा फोड़ना नहीं चाहता था।

सारे नदपुरे में सीतवा और कमोदवा की गाली उठ गई। चारो ओर इन दोनो के अश्लील संबंध का बाजार गर्म हो गया। देहातों में सभी कुछ क्षंतव्य है, पर किसी की स्त्री का गाली उठना उस परिवार के लिये मौत है। फूलेना सोचता—कमोदवा दिल की साफ थी, और बाहर भी साफ-बदन है।

पर ऐसा खोटापन उसके हृदय में कहाँ से आ गया कि मुझे भूलकर वह सीतवा के लिये मर रही है। मैं किस बात में सीतवा से हीन हूँ। रूप-रंग में भी सीतवा मुझसे अच्छा नहीं। मज़बूती में भी मैं किसी से कम नहीं। मेरी मांसल भुजाओं का एक प्रहार भी सीतवा न सहेगा। हाँ, सीतवा की आर्थिक स्थिति कुछ अच्छी है। पर धन और प्रेम में कोई संबंध नहीं। प्रेम तो दो हृदयों का शुद्धभाव है, जो एक दूसरे को अपनी ओर खींचता है। युवतियाँ शौर्य, औदार्य, मान और प्रेम की भूखी रहती हैं। इसलिये कमोदवा से संबंध-विच्छेद करने के पूर्व उससे एक-दो बातें कर लेना मैं उचित समझता हूँ।

आधी रात का समय था। सभी सो रहे थे। धीरे-धीरे फूलेना कमोदवा की कोठरी में गया। कमोदवा अपने जीवन के दिन गिन रही थी। इसलिये रात को सशंक सोती थी। पति को आते देख कहरती हुई उठ खड़ी हुई।

फूलेना—"इस हाव-भाव की आवश्यकता नहीं। मैं तुम से दो-चार खरी बातें करने आया हूँ।"

कमोदवा—"कहिए। क्या आज्ञा होती है?"

फूलेना—"तुम्हें क्या हो गया है कि घर का कोई काम-काज नहीं करतीं। बुड्ढी मा रामपुर हर दिन हम लोगों का कलेवा लेकर जाती है, और तुम घर में पड़ी सोया करती हो। तुम जो कहती हो कि तुम्हें रोग हो गया है, यह भी ठीक

नहीं। कारण, तुम्हारा शरीर दिन-ब-दिन तरक़्क़ी पर है। पुनः तुम्हारी करतूतों की रामकहानी सारे नदपुरे में इन दिनों प्रचलित है। मैं तुमसे साफ़-साफ़ पूछता हूँ कि सीतवा के साथ तुम्हारी गाली जो सारे गाँव में उठी है, वह कितने अंशों में सच है?"

कमोदवा—"तुम कितने नीच हो कि अपनी स्त्री का उपहास स्वयं करते हो? मैं सीतवा को सारे में न झोकूँगी कि उसे अपने घर में घुसने दूँगी। तुमसे बढ़कर वह सुंदर है, जो मैं उस पर फ़िदा हूँगी।"

फूलेना—"कमोदवा! क्या ये बातें तुम्हारे हृदय से निकलती हैं? तुम स्वयं अपने हृदय से पूछो। सहिष्णुता की भी सीमा होती है। अब तुम या तो यहाँ से अन्यत्र चली जाओ, या इस घर के काम में हाथ बँटाओ। मैं तुम्हें २४ घंटे का वक़्त देता हूँ। संसार का संबंध मन के मेल पर निर्भर है। यदि इस घर में तुम्हारा मन नहीं लगता, तो यह घर भी तुम्हें रखना नहीं चाहता।"

कमोदवा—"तुम क्यों इतना लालताँत हो रहे हो। तुमने मेरा क्या बुरा काम देखा, जो गीता सुनाने लगे। रोग पर तो किसी का वश नहीं है। शरीर पर पड़ गया है, तो जो चाहो कह लो। हाँ, शरीर की हड्डियाँ कुछ मोटी हैं। रोग से ग्रस्त होने पर भी ये निगोड़ी पतली नहीं होतीं। मैं मोटी भी तो नहीं हूँ। यदि तुम्हें यह भी नहीं सुहाता, तो

कुल्हाड़ी लेकर इन्हें टुकड़े-टुकड़े कर डालो। मैं तो दवाई या ओझाई के लिये न तुमसे कहती हूँ और न तुम्हारे घरवालों से। मैं अकेली आई और अकेली रोगों के साथ चली जाऊँगी। क्रूर दैव के यहाँ भी मेरे लिये एक बीता जगह नहीं है, तब तो इन उपहासों, गालियों और भर्त्सनाओं को अवसर हाथ लगा है।"

फूलेना—"कमोदवा, सुन। त्रिया-चरित्र एक पहेली है। खुद ब्रह्मा बाबा भी इस चक्र में पड़ बुद्धि खो बैठते हैं। पर तुम्हें यह भली भाँति मालूम है कि फूलेना केवल काम जानता है। यह भुलावे में नहीं पड़ सकता। अतः जो कुछ मैं कहता हूँ, उस पर ठंडे दिल से विचार कर अपना कार्य-क्रम स्थिर करना तुम्हारे लिये निहायत जरूरी है। फूलेना का यह तुम्हारे लिये सबसे पहला और सबसे पिछला वाक्य है।"

  

कमोदवा यह भली भाँति जानती थी कि फूलेना उस कोटि का आदमी है, जिसे कोई ठग नहीं सकता। उसमें दोष यही है कि वह पहले कोई बात ठीक से नहीं समझता। पर एक बार जो वह समझ लेता है, वह उसके लिये वज्र-गाँठ है। कोई भी तर्क, कोई भी क्रंदन, कोई भी दबाव, कोई भी ढकोसला, कोई भी अनुनय, कोई भी चापलूसी उसे निश्चित मार्ग से हटा नहीं सकती। बहुत सोच-विचारकर उसने निश्चय कर लिया है कि कमोदवा दो रास्ते पर अब

नहीं चल सकती। चाहे वह फूलेना को लेकर रहे, या सीतवा को अपनाए। फूलेना के शब्द स्पष्टतः उसके कान में गूँज रहे थे। वह स्वयं जानती है कि नदपुरे में उसके लिये चलना कठिन हो गया है। वह लज्जा और ग्लानि की अनुभूति करती है। वह यह भली भाँति समझती है कि जिस दिन चमरू के घर से वह विदा हो जायगी, उसे हिंदू-समाज में कहीं भी आसानी से स्थान न प्राप्त होगा। इसलिये उसके लिये आवश्यक है कि वह सीतवा के मोह से अपने को निर्मुक्त कर फूलेना पर अपने जीवन को पुनः एक बार विसर्जित कर दे। उसे भी सीतवा के चरित्रों का कच्चा चिट्ठा मिल चुका है। कितने घरों को उसने चौपट कर दिया है। कितनी ही निर्दोष बालाओं के जीवन की मिट्टी पलीद कर दी है। वह चमरू के घर को भी साफ किया चाहता है।

वह फूलेना का अभिमान, उसका त्याग, उसकी सहिष्णुता और क्षमाशीलता अनुभूत कर चुकी। उसकी मर्मभेदी बातें सुन चुकी। उसके शुद्ध हृदय का सच्चा उद्‌गार पढ़ चुकी। इसलिये ऐसे नररत्न की अवहेलना उसे जहन्नुम की राह दिखावेगी। बातों के सिलसिले में वह यह भी सुन चुकी है कि सीतवा छिपे पर्दे अहेर खेलना चाहता है। इस प्रकार के विचार में कमोदवा एक घंटे तक डूबी रही। ग्लानि से भर गई। सिर अवनत किए वह दबे-पाँव अपने कमरे से

निकली और आँगन के एक कोने में जहाँ पुआल के बिछौने पर फूलेना खर्राटा ले रहा था, उसके पास जा, पाँवों पर अपना सिर रख कातर स्वर से क्षमा की याचना करने लगी। तारों की चमचमाहट में उसके हृदय के भाव व्यक्त हो रहे थे। उसकी आँखें दिल की सफ़ाई की गवाही दे रही थीं। पाप के बोझ से दबा हुआ उसका मन कातरता का अवलंबन कर अधीर हो रहा था। शरीर की सारी मनोवृत्तियाँ चारो ओर से हटकर केवल फूलेना की ओर उन्मुख हो 'त्रायस्व' की रट लगा रही थीं। जनार्दन-स्वरूप पतिदेव कह उठे—

"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ;
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।"

---

[६]

आज २२ मई, १६४० है। परसों सेशन-कचहरी में मेरा मुक़दमा खुलेगा। मेरी ओर से मुक़दमे की पैरवी के लिये कोई प्रबंध न हो सका। मैं अपने बेटों के साथ जेल में सड़ रहा हूँ। सैकड़ों मेरे कुटुंबी हैं, पर कोई नज़र नहीं आते। यहाँ तक कि मेरे साले, बहनोई, दामाद, जो दिन-रात मेरी चलती के ज़माने में दरवाज़े पर डटे रहते थे, एक क्षण भी साथ नहीं छोड़ते थे, अब झाँकी नहीं मारते, यही दिनों का फेर है। इसी को बुरे दिन कहते हैं कि अपना भी पराया हो जाता है। मित्र भी शत्रु हो जाते हैं। सुख की कामना से जिसका आश्रय ग्रहण करते हैं, वह पीड़ा प्रदान करता है। जिसे अपना विश्वासी समझते हैं, वही जीवन का घातक हो जाता है।

मेरे साथ यह बर्ताव क्यों? मैं दरिद्र हो गया, मेरी सारी संपत्ति बिक गई, मेरे आचरण बुरे हो गए, मेरे पास कुछ न रहा, क्या इन्हीं कारणों से मेरे स्वजनों ने संग छोड़ दिया? प्रकृति बताती है कि विहग फलों से विरहित वृक्षों का परित्याग कर देते हैं। अनखिले गुलाबों पर भौंरे भूलकर भी नहीं मँडराते। पर मनुष्य न वृक्ष है और न गुलाब।

वह मानव-इंद्रियत्व (Organism) है। मानव-समाज में दरिद्रों, असहायों तथा बेचारों के साथ सभी सहानुभूति रखते हैं। दीनों के आवास के लिये धर्मशालाएँ, आश्रम, अनाथालय, दरिद्र-गृह प्रभृति खोले गए हैं। दरिद्रों के उद्धार के लिये स्वयं भगवान् उतर आते हैं। सैकड़ों उदार-हृदय दीनों के त्राण के लिये, आर्तों की संरक्षा के लिये, पीड़ितों के उद्धार के लिये सन्नद्ध रहते हैं। तब केवल मेरे साथ यह असहयोग क्यों ? हाँ, समझ लिया।

साधारण दुनिया जिस सीधी राह से चलती है, उसे मैंने पकड़ा नहीं। मेरा रास्ता बिलकुल उलटा रहा। संसार उसी का है, जो उसके लिये मरता है। जो संसार के अधिकांश प्राणियों के लिये अपने शरीर से एक बूँद लहू गिराता है, उसके लिये लहू की बूँदों की वृष्टि होती है। जो संसार के लिये एड़ी-चोटी का पसीना बहाता है, उसे उठाता है, प्रेम की दृष्टि से देखता है, वही संसार की प्रीति, श्रद्धा और प्रतिष्ठा का पात्र बनता है। वही लोकोपयोगी है, वही लोकदर्शी है। उसी का जीवन आदर्श है, नमूना है, अनुकरणीय है। जो संसार से घृणा करता है, उसके प्राणियों का विध्वंस करता है, उसके संचित धन को जबर्दस्ती अपने लिये लूटता है, निर्दोष व्यक्तियों को सताता है, दूसरों की बहू-बेटियों पर बुरी नजर डालता है, वही तो अलोकोपयोगी या लोक-शत्रु है। भला, लोक उससे प्रेम करे, तो

क्यों ? मैं इसी कोटि के मनुष्यों में हूँ, जो जीवन-भर दूसरों के उपकार में निरत रहा। मैं उन मनुष्यों का सरदार बना रहा, जो पेटू, निकम्मे और अपने लिये जीते हैं। भला, ऐसे लोक-बाह्य और लोक-विरोधी व्यक्ति से प्रेम करे, तो कौन ? जहाँ स्वार्थ है, वहाँ परमार्थ का स्थान नहीं। जहाँ अहंभाव है, वहाँ समष्टि-भावना की गुंजाइश नहीं। जहाँ आत्मार्थित्व है, वहाँ विश्व-कल्याण या विश्व-प्रेम की भावना फटकने भी नहीं पाती।

दीर्घकाय उपर्युक्त प्रकार के विचार-स्रोत में बहा चला जा रहा था। कभी जीवन के अच्छे हिस्से पर उसकी नज़र पड़ती, जहाँ कुछ कार्य करने के लिये मनुष्य को अवसर प्राप्त होते हैं, तो कभी जीवन के उस कुत्सित भाग पर, जहाँ उसे दुःख, ग्लानि, भय और मृत्यु का समाँ देख पड़ता है। इसी समय जेल का हवलदार इसके सामने बूट मचमचाता हुआ आ खड़ा हुआ, और कड़ककर बोला—"दीर्घकाय, परसों तुम्हारे मुक़दमे का निर्णय सेशन-कचहरी में होगा। पर तुमने जो वादा किया था, अभी तक नहीं चुकाया। तुम्हारे-ऐसा बतछोड़ आदमी मैंने नहीं देखा।"

दीर्घकाय—"हवलदार साहब, सलाम। मैं क्या कहूँ, संसार में मेरे लिये और कोई न रहा। जिनसे रुपए की मदद चाह रहा था, उन्होंने मुँह तक न दिखाया। वस्तुतः मेरे पापों का घड़ा भर आया है। संसार से अंतिम बिदाई के अतिरिक्त

मेरे लिये कोई दूसरा निस्तार शेष न रहा। हाथ जोड़ आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरे अपराधों को क्षमा करेंगे।"

हवलदार—"तुम पूरे खुर्राट हो। चले हो मुझे ही सिखाने। जिसके जीवन का प्रत्येक पृष्ठ मानव-रक्तपात से, अबला-बलात्कार से, परवित्तापहरण तथा षड्यंत्र से रँगा हुआ है, उसमें इतना शीघ्र परिवर्तन हो जायगा—कभी संभव नहीं है। काम निकालने के ये ढंग हैं। खैर, तुम्हें अपने क्रूर कर्मों के फल मिले बिना न रहेंगे। चाहे वे आज मिलें, या वर्षों बाद। ऑफ़िस में तुम्हारी बुलाहट है। रायबहादुर एस्० के० घोष वकील तुम्हारे मुक़द्मे की पैरवी के लिये सरकार से मुक़र्रर हैं। तुमसे परामर्श किया चाहते हैं। चलो, मिल लो। तुम्हारे काम ऐसे ही सधते हैं। गाँठ से पैसे क्यों ख़र्च करोगे।"

  

आज रामपुर की सेशन-कचहरी में ख़ासी भीड़ है। नरेंद्र के ख़ून के मुक़द्मे की अंतिम सुनवाई है। नौ-दस गवाहों के इज़हार हो चुके हैं। धूम्रकेतु यहाँ बदल गया है। इसलिये पी० सी० चौधरी साहब भी गवाह होकर यहाँ आए हैं। सरकार की ओर से बी० एन्० सिंह साहब हैं, और मुद्दालेहों की तरफ़ से रायबहादुर एस्० के० घोष हैं। सरकारी वकील बी० एन्० सिंह ने जूरी और जज को संबोधित करते हुए कहा—

"जनाब जज साहब और मान्य जूरीगण !

यह मुक़द्दमा, जिसकी सुनवाई हो चुकी, नितांत रोमांचकारी है। इस मुक़द्दमे में जो गवाहों के इजहार हुए हैं, उनमें सात के बयान विचारणीय हैं। नरेंद्र के नौकर लखुआ कहार तथा रघुरेसरा कुर्मी पूर्णतः इस बात की पुष्टि करते हैं कि ख़ून के दिन एक बजे दीर्घकाय नरेंद्रसिंह से मिलने के लिये उनकी कोठी पर गया था। दोनो में एक घंटे तक बात हुई। अध्यापक हरदेव का इजहार भी इसी बात का समर्थन करता है, और बातचीत के वक़्त उसका वहाँ रहना सिद्ध होता है। चौथा सरकारी गवाह चमरू धीवर है। इसने उस दिन की शाम को ठीक छ बजे नरेंद्र को कमर में धाती, शरीर पर कुरता, सिर पर टोपी और पाँव में जूते पहने, कंधे पर चादर रक्खे और हाथ में छड़ी दबाए हरदेव और दीर्घकाय के घर की ओर जाते देखा। उपर्युक्त साक्षी हरदेव भी इस बात की तसदीक़ करता है कि नरेंद्रसिंह सवा ६ बजे शाम को उसके यहाँ दशहरा मिलने गया था, और वहाँ से दीर्घकाय के यहाँ सात के लगभग गया। धूम्रकेतु, जो इस मुक़द्दमे में एक सर्वप्रधान गवाह है, इस बात को स्पष्टतः प्रमाणित कर देता है कि उसने नरेंद्र की लाश दीर्घकाय के घर में देखी, और उसका यह बयान, जो लाश की प्राप्ति में सहायक हुआ है, इस मुक़द्दमे का अमर प्रमाण है। गवाह संख्या छ दारोग़ा राघवेंद्र के साक्ष्य से सिद्ध होता है कि

उसने नरेंद्र के जूते, छड़ी, टोपी दीर्घकाय के घर के कूड़े-करकट के नीचे गड्ढे से बरामद किए हैं। यह भी धूम्रकेतु के बयान के सहारे। नरेंद्र की लाश, उसके वस्त्र, वह कुदारी, जिससे खनकर जंगल के सोते में लाश गाड़ी गई थी, सभी धूम्रकेतु के बयान से प्राप्त हुए हैं। लाश को छोड़ सभी चीजें आप लोगों की पेशी में मौजूद हैं। इन चीजों की पहचान भी विश्वासी तथा योग्य व्यक्तियों द्वारा कराई गई है। यदि धूम्रकेतु लाश का पता न बताता, तो कोई भी मानवीय-शक्ति लाश का सुराग़ नहीं पा सकती। इतना प्रबल प्रमाण रहते हुए भी अफ़सोस के साथ कहना पड़ता है कि धूम्रकेतु हुज़ूर आला के इजलास में आकर साफ़ इनकार करता है कि वह इस मुक़दमे में कुछ नहीं जानता। क़ानून के मुताबिक़ पी० सी० चौधरी साहब की गवाही यहाँ ली गई है, जिन्होंने अपने इजलास में धूम्रकेतु का बयान सर्वप्रथम दर्ज किया था। अतः यहाँ इनकार करने पर भी धूम्रकेतु का बयान ज्यों-का-त्यों रहेगा। गवाह नंबर सात डॉक्टर हैं। उनकी साक्षी से यह सिद्ध होता है कि नरेंद्र गला दबाकर मार दिया गया है। धूम्रकेतु का भी बयान यही है।

"उपर्युक्त बयानों से यह बिलकुल साफ़ है कि जान-बूझकर षड्यंत्र के साथ दीर्घकाय ने यह हत्या की है। इस जुर्म में दीर्घकाय को प्राण-दंड की आज्ञा फ़रमाई जाय। इसके

बेटे दिलबहार और गुलाम, इसका भांजा किन्नर और भतीजा विजय सभी समान रूप से इस जुर्म में शामिल हैं। एवं ये सभी प्राण-दंड के अधिकारी हैं। धूम्रकेतु भी परोक्ष रूप से इस पाप-कर्म में सम्मिलित है। इसलिये इसे प्राण-दंड की आज्ञा न देकर दस वर्षों के लिये सश्रम कारावास का आदेश प्रदान किया जाय।"

इस पर रायबहादुर एस्० के० घोष ने बहस की:—

"जनाब जज साहब तथा जूरी साहबान !

यह मुक़दमा तो पहले चल ही नहीं सकता था। कारण, इसमें एक भी चश्मदीद गवाह नहीं है। खून के मुक़दमे में आँखों से बिना देखे गवाहों के इजहारों का कोई मूल्य नहीं है। बेबुनियाद का यह मुक़दमा दारोग़ा राघवेंद्र की दिमाग़ी सूझ की करतूत है। ग़रीब मुवक्किल दीर्घकाय दारोग़ा साहब की मुट्ठी गर्म नहीं कर सका। दारोग़ा की मार और धमकी से घबराकर धूम्रकेतु ने उसके कहे अनुसार पी० सी० चौधरी साहब के इजलास में गवाही दी है। पर न्याय-भवन का प्रबल आश्रय पा यहाँ वह साफ़ इनकार करता है। मन की जिस अवस्था में धूम्रकेतु का बयान छोटी अदालत ने दर्ज किया था, उस पर नजर रखते हुए यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उस बयान की कोई प्रामाणिकता नहीं है। क्रूर पुलिस के फ़ौलादी पंजे में पड़े हुए, उल्टे-सीधे सिखाए हुए क्षुब्ध हृदय का वह बयान है। इसलिये

जब इस मुक़द्मे के सर्वप्रधान गवाह धूम्रकेतु का इजहार ही अप्रामाणिक है, तो उस पर खड़ा किया गया मुक़द्मे का यह महल खुद-बखुद नीचे गिर पड़ता है।

"बात ऐसी है कि अध्यापक हरदेव और नरेंद्र में बहुत दिनों से शत्रुता चली आ रही थी। वह उसकी बिरादरी और समान स्थिति का आदमी है। हरदेव यह भी क़बूल करता है कि दीर्घकाय के साथ वह दुर्घटना के दिन एक बजे नरेंद्र से मिलने गया था। शाम को सवा ६ बजे नरेंद्र उसके यहाँ मौजूद था—यह बात भी उसकी गवाही से साबित होती है। बहुत मुमकिन है कि उसी ने नरेंद्र की हत्या की है। वह अपनी बचावट के लिये पुलिस को रुपए देकर, यहाँ गवाह बनकर आया है, और दोष दूसरों पर लगाता है। ख़ून का मुक़दमा अधिकतर संभावना (Probality) पर निर्भर है। जब इस मुक़द्मे में यह संभावना है, तब हमारे मुवक्किल मुजरिम नहीं हैं। इसलिये संदेह का लाभ हमारे मुवक्किलों को दिया जाय। वे विना जुर्म रिहा किए जायँ।"

जज साहब ने बहस सुनने के बाद जूरियों की राय लिखकर फ़ैसले की तारीख़ १ जून निश्चित की, और कचहरी बरख़्वास्त की।

  

धूम्रकेतु—"दीर्घकाय के फेर में पड़ मैं चौपट हो गया।

दारोग़ा ने भी बड़े-बड़े प्रलोभन दिए। मेरे सामने सोने की चिड़ियाँ रक्खीं। चाँदी का महल क़ायम किया। मेरी ही सहायता से गड़े मुर्दे को उखाड़ा, और मुझे ही दस वर्ष के लिये नरक-कुंड में डाल दिया। पापी दीर्घकाय तो आप गया ही, और यजमानों को भी लेता गया। अब मेरी स्त्री और तीन छोटे-छोटे बच्चे कैसे जिएँगे।"

❀ ❀ ❀

दीर्घकाय—(पीछे से आकर) "धूम्र ! तुमने मुझे और मेरे परिवार को विनष्ट कर दिया। यदि तूने पता न बतलाया होता, तो मैं बेटों और भतीजे-भांजे के साथ चौदह वर्षों के लिये दामुल नहीं पड़ता। संतोष यही है कि तुझे भी कृतघ्नता का फल मिला, और जेल की बंद हवा खानी पड़ी।"

धूम्रकेतु—"आपकी काली करतूतों का पता मेरे बिना भी लग जाता। विश्व में कोई भी काम ऐसा न हुआ, जिसका पता लोक को न मिला हो। मैं तो केवल निमित्त-मात्र हुआ। ईश्वर की कृपा है कि मुझे अपने कुकर्मों के लिये दंड मिला। जो अपने अपराधों और क्रूर कर्मों का फल शीघ्रता से नहीं भोगता, उसे भविष्य में कठिन यंत्रणा भोगनी पड़ती है। मेरे लिये तो जेल घर से भी अधिक सुखकर है। यहाँ भर-पेट खाने को अन्न मिलता है, पहनने को कपड़े और शीत से बचने के लिये कंबल। बीमार पड़ने पर डॉक्टरों की सहायता

भी मुफ्त मिलती है। घर ही पर क्या रक्खा है ? दिन-भर कड़ी मिहनत करने पर भी न अपना पेट चल सकता था, और न परिवार का। ख़ुद अपनी ही दशा पर क्यों नहीं विचार करते।"

दीर्घकाय—"तू तो दार्शनिक बन गया। मूर्ख ! टूटे झोपड़े की बराबरी क्या जेल कर सकता है ? सोने के पिंजड़े में बंद कीर क्या खुले मैदान में खड़े वृक्षों के पत्तों पर बैठे तोतों की तुलना में आ सकता है ? जीवन की आजादी ही सब कुछ है। जिसकी वह स्वतंत्रता छीन ली गई, उसका सारा जीवन किरकिरा हो गया। वह तो जीते मरा हुआ है।"

धूम्रकेतु—"संकट की अवस्था में संतोष शांति का विधायक है। संतोष का अभाव मृत्यु से भी भयंकर है। यदि मैं आपकी भाँति सोचता रहूँ, तो क्या मेरी अवस्था में परिवर्तन न उपस्थित होगा। आपने जीवन का एक पहलू देखा है। जीवन का केवल बुरा हिस्सा ही नहीं होता, वरन् उसका अच्छा हिस्सा भी है। जीवन का अच्छा भाग कुछ सुंदर काम करने के लिये अवसर प्रदान करता है। आपने अपने जीवन के प्रशस्त भाग को बुरे कर्मों की वेदी पर अर्पित कर दिया है। इसलिये इसके अच्छेपन को आप भाँप नहीं सकते। आज ही प्रातःकाल जेल के उपदेशक पं० दीनबंधु कह रहे थे कि संसार में एक-से-एक ऊँचे आदर्श हैं, जिनके लिये आदमी जीवन क़ुर्बान करता है। जो कोई भी आदर्श या लक्ष्य

लेकर मरता है, वही वीर है, वही शूर है। आदर्श कभी लुप्त नहीं होता, उसमें परिवर्तन अनिवार्य है। आदर्श का अनुयायी अपने प्रशस्त कार्यों और गुणों के रूप में जीवित रहता है। पर मेरी और आपकी मृत्यु सदा के लिये हो गई। हम लोगों का नामलेवा कोई न रहेगा। मेरे और आपके कार्य घृणा के विषय हैं। मृतक के वंशधर उसकी चीज़ों की संरक्षा करते हैं। उसके कपड़े, अस्त्र-शस्त्र, उसकी पुस्तकें, अख़बार, ग्रामोफ़ोन आदि को स्मारक के रूप में रखते हैं। हमने और आपने अपने वंशधरों के लिये क्या छोड़ा है, जिसका अनुसरण वे करेंगे, या जिसकी संरक्षा में वे दत्त-चित्त रहेंगे।"

दीर्घकाय—"मैंने क्या नहीं किया है? मैंने वही किया है, जो बड़े-बड़े योद्धा करते हैं। वे भी मार-काट करते हैं, दूसरों का वध करते हैं, और मैंने भी उन्हीं वीरों का लक्ष्य अख़्तियार किया था।"

धूम्रकेतु—"अच्छा आप भी योद्धा बन गए। कायर और योद्धा में बड़ा अंतर है। आपने एक निर्दोष और निरपराध व्यक्ति के साथ विश्वासघात कर, धोखे से गला घोटकर उसे मार डाला। आपने अपने बुरे कर्मों को छिपाने का प्रयत्न किया। आपके कर्मों को लोक-मत या जनता की सहानुभूति प्राप्त नहीं है। पर योद्धा या सच्चे वीरों के पीछे लोक-मत है। उन्हें भिन्न-भिन्न शक्तियाँ—यथा नौ-शक्ति, आकाश-शक्ति,

पदाति—प्राप्त हैं। वे सिद्धांत-विशेष के लिये प्राणों की आहुति देते हैं। तोपों के भय से, गोलंदाज़ी के आक्रमण से, हवाई जहाज़ों की बम-वर्षा से, सैनिकों के आघात से उन्हें डर नहीं है। वे किसी भी न्याय-कोर्ट की सत्ता के सामने सिर नहीं झुकाते। वे जगत् के परिचालन के लिये, राष्ट्र के संचालन के लिये तथा समाज के कल्याण के लिये बुरों का, बेईमानों का, उत्पीड़ितों का और स्वार्थभरों का अस्तित्व हितकर नहीं समझते। अतः जगत् के रंगमंच से उन्हें हटा देते हैं। ऐसे वीरों के कार्य दूसरों या लोक और समाज के कल्याण के लिये होते हैं। अतः ऐसे वीर मारे जाने पर भी अमर रहते हैं। उनके आचरण भावी मानव-संतानों के लिये अनुकरणीय हैं। तभी तो विद्या-शूरों की संतति विद्या के पीछे, वैज्ञानिकों की संतति वैज्ञानिक खोजों के पीछे, शूरों की संतति शौर्य के पीछे मर-मिटने के लिये तैयार रहती है। उनकी पीढ़ी अमर बनी रहती है।"

धूम्रकेतु की बातें सुनकर दीर्घकाय अनुताप से भर गया, और आजन्म अपने पापों का प्रायश्चित्त करने के लिये संकल्प किया। मनुष्य शिक्षा तथा प्रोत्साहन की बातें सुनकर कुछ समय तक चकमे में आ जाता है। वह अपने सुधार की बातें सोचने लगता है। पर ज्यों ही कर्तव्य के कठोर पथ पर पाँव रखता है, त्यों ही वह फिसल जाता है। उसके सारे मनसूबे ग़ायब हो जाते हैं। दीर्घकाय ने विचारा था कि वह अपना

जीवन साधुता से बितावेगा, लोक-सेवा करेगा, और जेल के नियमों का पालन करेगा। जेल में भी लोक-सेवा के अनेक कार्य हैं। भोजन बनाना, पानी भरना, कोल्हू पेरना, तरकारी आदि पैदा करना, कपड़ा बुनना, पीड़ितों की सहायता करना आदि। पर जो कार्य उसे मिलता, अपनी सुखप्रियता तथा दिल चुराने के कारण वह जेल के पदाधिकारियों के कोप का भाजन सदा बना रहता। कोल्हू पेरते समय उसकी आँखें निकलने लगतीं। तेल पेरते समय गति मंद करने के कारण उस पर कोड़ों की मार पड़ती। उसे मोरब्बा पीटना पड़ता। मोरब्बे पीटते समय जो छींटें शरीर पर पड़तीं, उनसे उसके शरीर में व्रण हो जाता। खेत कोड़ना और पटाना पड़ता था। हर जगह वह गालियाँ सुनता, झिड़कियाँ खाता तथा बेइज्जत होता, पर कभी दुःखित न होता। वह यही समझता था कि किए पापों से छुटकारा पाने के लिये वह प्रायश्चित्त कर रहा है।

चमरू की कर्तव्य-परायणता, साधुता तथा कार्य-तत्परता के कारण मछुआटोली का मछली-डीपो खूब चला। प्रत्येक दिन सौ-डेढ़ सौ की मछलियाँ बिकतीं। प्रायः दूना नफ़ा होता। मास के अंत में प्रत्येक हिस्सेदार को, नौकर आदि का वेतन चुकाने के बाद, चालीस प्रतिशत मुनाफ़ा मिलता। डीपो के सभी कार्य-संचालक इस आशातीत सफलता के लिये परमात्मा को धन्यवाद देते। डीपो की सफलता के अनेक कारण थे। पहला कारण तो देहातों से सस्ती मछलियों का मिलना था। दूसरा कारण चमरू की अच्छी मछलियाँ खरीदने की कुशलता था। तीसरा कारण जगदानंद की काम लेने की क्षमता था।

जगदानंद साँवला आदमी था। इसकी कौड़ी की-सी आँखें थीं। फूले हुए गाल, झाबरदार केश और ठिगना क़द। यह लगन से काम करनेवाला आदमी था। जिस काम में लगता, अपनी सारी शक्तियाँ वहीं संचालित करता। इसकी बुद्धि मंद थी। इसमें विवेक का अभाव था। पर था बड़ा अध्यवसायी। प्रोपेगैंडा करने में परम प्रवीण था। लिखने के लिये इसका हाथ खुजलाता रहता था। उसे

इसकी परवा नहीं रहती थी कि उसका लेख संगत है या असंगत। जगदानंद मत्स-डीपो, ताज़ी-ताज़ी मछलियाँ, सस्ती दर, नक़द बिक्री—आदि काग़ज़ पर छापकर चारो ओर बँटवाता तथा साइकिल पर सवार हो स्वयं लोगों से कहता फिरता। अतः इसके डीपो में ग्राहकों की भीड़ लगी रहती। डीपो में मछली बेचनेवाले केवल तीन ही थे—चमरू और उसके दो लड़के—कलटू और फूलेना। लड़कों को और भी काम करना पड़ता था। अतः जगदानंद ने धीवरी और उसकी पतोहू कमोदवा को भी चार-चार रुपए मासिक पर नियुक्त कर लिया। धीवरी हर दिन कलेवा लेकर आती थी। कमोदवा भी रामपुर से नमक-तेल ले जाकर गाँवों में बेचा करती थी। पर डीपो में बहाल होते ही दोनो जगदानंद की प्रसन्नता के भाजन बन गईं। मछली बेचने, तौलने और दाम वसूल करने की कुशलता इन दोनो में ऐसी थी कि कोई मर्द इनकी बराबरी इस बात में नहीं कर सकता था। कमोदवा के नज़दीक तो नौजवान ग्राहकों की और भीड़ लग जाती।

जगदानंद ऊपर से पूरा बगुला-भक्त था। धर्म और ज्ञान की ही बातें करता। हर दिन गीता का पाठ करता और उपनिषदों की पुस्तकें भी जमा किए रहता था। पर इसमें न गीता समझने की शक्ति थी, और न उपनिषद्-मनन करने की क्षमता। इसने दूसरों पर धाक जमाने के उद्देश्य से गीता

के दो-चार श्लोक तथा उपनिषद् के चंद मंत्र कंठस्थ कर लिए थे। कभी-कभी अपने स्कूल में गीता-संबंधी व्याख्यान भी अँगरेज़ी में दे देता था। भीतर से वस्तुतः यह दुरात्मा और दुष्ट-स्वभाव था। सभी इसे घृणा की दृष्टि से देखते और इसकी धज्जियाँ उड़ाते थे। इसके अधीन काम करनेवाले शिक्षक तो इसे देख काँप उठते थे। अपनी वार्षिक रिपोर्ट में यह शायद ही किसी की तारीफ़ लिखता हो। छिद्रान्वेषण इसकी प्रकृति का निर्देश था।

डीपो में कमोदवा के आते ही यह उसकी तरुणाई और रूप-लावण्य पर मुग्ध हो गया। पहले यह डीपो में दो बार आता था—सुबह आठ बजे और शाम को सात बजे। सुबह तो नाम-मात्र के लिये आता था, पर शाम को एक-दो घंटे डीपो में ठहरकर हिसाब-किताब करता था। अब तो यह डीपो में कई बार आने लगा। डीपो इसकी आँखों को संतृप्ति प्रदान करने की ख़ास वस्तु हो गई। स्कूल में लड़कों को जब टिफ़न की छुट्टी होती, तब जगदानंद साइकिल पर डीपो पहुँच जाते। किसी-न-किसी बहाने से कमोदवा को अपने घर भेजते। जब वह आगे बढ़ती, हज़रत भी साइकिल पर उसका पीछा करते। राह में दोनो हँस-हँसकर बातें करते। कमोदवा चंचल-स्वभाव थी। उस पर मोह का रंग जल्द ही चढ़ जाता था। वह अपना कर्तव्य और धर्म भूल जाती थी। सीतवा के साथ इसी वजह से

उसकी हँसी उठी थी। जगदानंद के पास तो सब कुछ था—धन, यौवन, मान, सामाजिक प्रतिष्ठा, सुंदर भवन, सुंदर रहन तथा भव्य वेश-विन्यास।

जगदानंद भी सीतवा की भाँति विवाहित था। पर इसके कोई संतान न थी। इसकी स्त्री एक लंबी, छरहरी युवती थी। नाक लंबी, मस्तक ऊँचा, ओठ लाल और नेत्र रतनार थे। ललाट पर सिंदूर का बिंदु लगाए रहती और हाथों में सोने के दो कड़े शोभते रहते थे। यह बनारस के एक नोनियार वैश्य की कन्या थी। धार्मिक वातावरण में परिपालित होने के कारण यह बिना स्नान और देवोपासना किए मुँह में पानी नहीं डालती थी। यह चौके में नौकर को भी न घुसने देती थी। पर जगदानंद के यहाँ कुत्ते दालान में विहार करते थे। कभी-कभी चौके में आ जाते थे।

इसे रमा सह न सकती थी। वह हिंदू-रमणी-सी रहती, पर पतिदेव को बिलायती रंग में रँगा पाती। अतः पति की ओर से उदासीन रहने लगी। खान-पान और रहन-सहन के संबंध में पति-पत्नी के बीच हर दिन योरपीय युद्ध का एक लघु संस्करण हो ही जाता। दोनो एक दूसरे से ऊबे रहते। इसी बीच एक दूसरी बला कमोदवा इस क्षुब्ध गृह-वातावरण में उपस्थित हुई। कमोदवा अंदर घुस मछली रखती, और जगदानंद के लिये पकाती। उसके हाथों की पकाई मछली जगदानंद को खाते देख रमा कुढ़ जाती, और वसुधा से

प्रार्थना करती—"मा ! यदि तू फट जाती, तो मैं तेरे अंदर सदा के लिये समा जाती।"

रमा और जगदानंद में भिन्नता की खाईं और चौड़ी हो गई। जब कभी रमा ज़बान हिलाती, तो जगदानंद बेतरह उस पर टूट पड़ते, और चैले, जूते तथा छड़ी से उसकी मरम्मत कर देते। बेचारी रमा घबराकर मायके चिट्ठी लिखती, और जब जवाब आता, तो उसे नहीं मिलता। जगदानंद बीच ही में उसे पढ़, टुकड़े-टुकड़े कर हवा के हवाले कर देते।

हिंदू-रमणियों की स्थिति क्या ही दयनीय है। उन्हें चू करने का अधिकार नहीं। पति कमाता है, इसलिये रमणी पर इतना प्रभुत्व रखता है। उसे क्रीत दासी बनाए रखता है। वह खुद छिपे परदे या खुल्लमखुल्ला चरित्र का अहेर खेलता है, पर उसकी स्त्री को मुँह खोलने का भी अधिकार नहीं। जगदानंद की दृष्टि में रमा कुत्ते से भी हीन है। स्कूल जाते समय बाहर से घर पर ताला जड़ दिया जाता है। आप कुत्ते को साथ लेकर बड़े आदर से टहलाते हैं, चुचकारते हैं, खिलाते हैं, सुलाते हैं, पर रमा को बाहर निकलने का भी अधिकार नहीं। वह अपने जीवन से तंग आ गई थी, और कभी-कभी इसे ख़तम करने का उपाय सोचती थी।

  

छोटा नागपुर की पहाड़ी नदियाँ चैत्र-वैशाख के महीनों

में प्रायः सूख जाती हैं। उनमें मछली मिलना कठिन हो जाता है। अतः मछली का व्यापार मंद हो चला। चमरू के दोनो लड़कों का काम छूट गया। धीवरी भी हटा दी गई। केवल चमरू और कमोदवा के काम जारी रहे। चमरू तालाबों या नदी के गहरे दहों से कुछ मछलियाँ लाता और डीपो में बेचता। चमरू भी दिन-भर अपना काम जारी नहीं रख सकता। आमदनी-खर्च प्रायः बराबर हो गए। डीपो के हिस्सेदारों ने असंतोष प्रकट किया, तब कमोदवा को जगदानंद ने अपने स्कूल के छात्रावास में झाड़ू देने पर नियुक्त किया। उसका वेतन चार से आठ कर दिया गया। वह नाम-मात्र के लिये छात्रावास में काम करती, वस्तुतः जगदानंद के घर ही का सारा काम सँभालती थी।

कमोदवा को मालिक की ओर से साड़ी भी मिलती और कुरती भी। वह दिन-भर वहाँ रहती और शाम को नदपुरा लौट जाती थी। शहर में रहने के कारण कमोदवा बहुत होशियार हो गई। वह फूलेना से दिल खोलकर मिलती, उससे प्रेम करती, और उसे रिझाने की यथासाध्य चेष्टा करती। जगदानंद का बाजार यही करती थी। हर दिन कुछ पैसे बचा लिया करती थी। शाम को, घर लौटते समय, उन पैसों से कभी फूलेना के लिये धोती खरीद लेती, तो कभी गंजी, कभी घर पर लकठो लाती, तो कभी बुँदिया। घरवालों

को खिलाती। इसे हर दिन कुछ-न-कुछ आमदनी होती थी। जगदानंद से जो कुछ माँगती, पाती थी। अतः चमरू को छोड़कर घर में कोई व्यक्ति न था, जो कमोदवा से अप्रसन्न हो। कभी-कभी चमरू कह भी देता कि बहू घर ही पर रहती, तो अच्छा होता। इस पर सारे घरवाले एक स्वर से बोल उठते—"बहू की बड़ी आमदनीवाली नौकरी है। ऐसी चाकरी छोड़कर और कौन दूसरा पेशा अख्तियार करना श्रेयस्कर होगा।" घर के सभी आदमियों की राय अपने विरुद्ध पाकर बुड्ढा मन-ही-मन कचोट खाकर चुप्पी साध लेता।

कोई भी बुरा काम अधिक दिनों तक गुप्त नहीं रह सकता। कोई भी मानव दो रास्ते पर चिर काल तक नहीं चल सकता। कोई भी मन दो जगहों पर न्यस्त नहीं रह सकता। अतः कमोदवा रह-रहकर यही सोचती थी कि कब वह दिन आवेगा, जब मैं जगदानंद की ही होकर रहूँगी। रमा उसकी आँखों में काँटे-सी खटकती थी। वह उसके भावी सुखमय जीवन का पर्वत-कल्प प्रत्यूह थी। वह जगदानंद से स्वच्छंदता-पूर्वक मिल नहीं सकती थी, और न वही मिल सकते थे।

वैशाख के महीने में हर वर्ष जगदानंद का स्कूल, गर्मी की छुट्टी में, डेढ़ मास के लिये बंद होता था। छुट्टी में जगदानंद सैर किया करते थे। इस बार इन्होंने काशी की यात्रा करना

विचारा था। इस यात्रा में कमोदवा भी शरीक होनेवाली थी। रमा ने भी इस यात्रा में अपनी मुक्ति का द्वार देखा। कारण, उसका मायका बनारस ही में था। पितृगृह में पुनः एक बार प्रविष्ट कर वहाँ से वापस आनेवाली नहीं।

जीवन का शेष भाग गंगा-सेवन और शिव-पूजन में बीतेगा। पति के जीते ही विधवा-जीवन का भार उद्वहन करेगी।

कमोदवा ने रामपुर को छोड़कर कोई दूसरा शहर नहीं देखा था। काशी का नाम कई बार सुन चुकी थी। यह भी सुना था कि गंगा-माता बनारस के पास ही बहती हैं। हिंदू-स्त्री भ्रष्ट-चरित्र हो जाती है, तो भी तीर्थ-स्थानों में उसकी श्रद्धा बनी रहती है। वह अपनी मुक्ति की कामना तीर्थ-यात्रा द्वारा करती है। स्वयं मुक्ति को वह नहीं समझती है, पर वह अवश्य एक अभीष्ट वस्तु है। उसे देव-देवियों में विश्वास रहता है, पर वह यह नहीं जानती कि उसके बुरे कर्मों को देवता देखता है, और बुरे कर्मों का परिणाम उसे भोगना ही पड़ेगा, चाहे वह काशी-करवट ले, या बदरीनारायण का दर्शन करे। वह एक तीर से दो शिकार करना चाहती थी। वह इधर चरित्रों का अहेर खेलती थी, और उधर पुण्य बटोरने के लिये भी लालायित थी।

  

जगदानंद बाबू अपने छोटे परिवार के साथ काशी की

एक धर्मशाला में ठहरे हैं। रमा ने कई बार आग्रह किया कि क्या अच्छा होता कि सभी उसके पितृगृह पधारते। पर भंडाफोड़ के भय से जगदानंद ने उसकी बात सुनी अन-सुनी कर दी। रोज़ सुबह जगदानंद रमा, कमोदवा, एक नौकर तथा अपने प्रिय कुत्ते के साथ गंगा जाते, स्नान कर विश्वेश्वरनाथ पर जल चढ़ाते, और धर्मशाला में लौटकर कचौड़ी-गली की कचौड़ी खाते। पुनः दस बजे के लगभग एक घोड़ा-गाड़ी पर सवार हो बनारस के दर्शनीय स्थलों का दर्शन करते। दो-तीन दिन तो इसी प्रकार बिता डाले। तीसरे दिन हिंदू-विश्वविद्यालय देखने का निश्चित विचार था, और चौथे दिन उन्होंने विंध्याचल चलने का विचार स्थिर किया था।

रमा ने प्रातःकाल होते ही कहा—"स्वामिन्! मेरी तबि-यत अच्छी नहीं जान पड़ती। सिर में वेदना है और वमन की भी कुछ प्रवृत्ति है। दूसरी बात मैं यह जानना चाहती हूँ कि आप मेरे पिता के घर चलेंगे या नहीं?"

जगदानंद—"रमा! तुम्हारी अस्वस्थता सुनकर मैं बहुत दुःखी हूँ। आज का सारा प्रोग्राम मटियामेट हो जायगा। कल की चिंता तो बनी ही रहेगी। अब रहा तुम्हारे मायके चलने का प्रश्न। तुम्हीं सोचो, इतने आदमियों के साथ तुम्हारे पिता के घर चलना ठीक होगा? उनकी आर्थिक अवस्था भी शोचनीय है।"

रमा—"आपसे वह कुछ थोड़ा ही माँगते हैं। पर ग़रीब गृहस्थ भी अपनी बेटी और दामाद की ख़ातिर करता है। भला, उन्हें यह बात मालूम हो जायगी कि बनारस आकर भी हम लोग उनसे न मिले, तो मेरे मा-बाप को कितना बड़ा दुख होगा।"

जगदानंद—"मैं तो न जाऊँगा।"

रमा—"कृपया मुझे अकेले एक-दो घंटे के लिये वहाँ जाने की आज्ञा दीजिए। मैं वादा करती हूँ कि शाम तक वापस चली आऊँगी। जगदानंद भीतर से चाहते ही थे कि रमा से किसी प्रकार पिंड छूटे। उसने हाँ कर दी। दूसरे दिन प्रातःकाल जगदानंद अपनी पार्टी के साथ हिंदू-विश्व-विद्यालय की ओर चले, और रमा सिर्फ एक सादी साड़ी और दो चूड़ियाँ पहने मातृगृह की ओर एक साइकिल-रिक्शा पर चली। रमा के सभी शारीरिक शृंगार के सामान धर्मशाला की कोठरी में लोहे के बॉक्स में थे, और उसके जीवन का शृंगार कमोदवा के साथ बनारस की गलियों में विनोद कर रहा था। नौकर कुत्ते के साथ आज कोठरी की निगरानी के लिये धर्मशाला ही में रह गया।"

जगदानंद बाबू को आज मुँह-माँगा वर मिला। वह हिंदू-विश्वविद्यालय में न जाकर एक अँगरेज़ी होटल में चले गए। वहाँ एक कमरा दस रुपए रोज़ पर लेकर उसमें ठहरे। सारा दिन कमोदवा के साथ वहीं बिताया। संध्या होते

धर्मशाला में वापस आए। नौकर को तीन आने पैसे खाने के लिये देकर पुनः उसी होटल में दाखिल हुए। नौकर से कहकर गए थे कि यदि रमादेवी लौट आएँ, तो कह देना कि विश्वविद्यालय में अध्यापक वर्मा के यहाँ प्रीति-भोज है। मैं आज रात-भर वहीं रहूँगा। कमोददेवी भी वर्मा साहब की पत्नी के साथ रहेंगी।

रात के ठीक साढ़े सात बजे रमा अपने पिता और माता के साथ धर्मशाला लौट आई। नौ बजे तक पतिदेव की प्रतीक्षा करती रही। पूछने पर नौकर ने सारी कहानी कह डाली।

रमा ने पिता से कहा—"बाबूजी! आप अध्यापक वर्मा को तो जानते हैं। वह छपरे के हैं।"

प्रेमनारायण—"हाँ। खूब जानता हूँ। यहाँ से तीन सौ गज की दूरी पर उनकी कोठी है। अँगरेजी के अध्यापक हैं। तुम्हारे भाई नरसिंह को खूब मानते हैं।"

रमा—"कृपया आप देख आवें कि हजरत वहाँ हैं या कहीं दूसरी जगह गए हैं।"

  

रमा ने अपना बॉक्स खोला। पत्र-कागज उठाकर उस पर लिखना शुरू किया। पत्र समाप्त कर साड़ी उतारी, और मायके से जो साड़ी ले गई थी, उसे पहना। सोने की चूड़ियाँ भी निकालकर बॉक्स में रख दीं। लिफ़ाफ़े में पत्र

और कुंजी बंद कर नौकर के सुपुर्द किया। इसी बीच प्रेमनारायण बाबू लौट आए। उन्होंने रमा से कहा—"बेटी! अच्छा होता, तुम अब मेरे साथ रहतीं। मेरे कोई दूसरी संतान भी नहीं है।"

रमा अपने सारे दुखों की कहानी मा को सुना चुकी थी। तीनो आत्माएँ जहाँ से आई थीं, वहीं चल पड़ीं।

सुबह होते ही जगदानंद कमोदवा के साथ, फिटन पर चढ़े, धर्मशाला आए। रमा को न देख नौकर पर लाल-ताँत होने लगे। नौकर ने रमा का पत्र चुपचाप जगदानंद के हाथों में दे दिया। पत्र खोलकर पढ़ना प्रारंभ किया—

काशी-धर्मशाला
१५।५।४१

"आराध्य देव,

प्रणाम।

प्राक्तन पापों के कारण आपका संबंध ऐसी रमणी के साथ हुआ, जो आपकी सेवा न कर सकी। इसके लिये मैं दुःखिनी हूँ। विवाह स्त्री और पुरुष के हृदयों का मिलन है। यह उनके पावन प्रणय का प्रसाद है। यह उन्हें एक मार्ग, एक लक्ष्य और एक दिशा में संचालित करता है। पर 'ईश्वरेच्छा बलीयसी।' आपका संयोग मुझसे हुआ, जिसके विचारों, भावों और चरित्रों से आपके विचार, भाव और चरित्र मेल नहीं खाते। मैंने अनेक चेष्टाएँ कीं, अनेक यंत्र-

ख्याओं का सामना किया, आपके ताड़न तथा भर्त्सना की परवा न की, आपके अनुकूल अपने को बनाने का प्रयत्न किया, पर सफल-प्रयास न हुई । दैव-संयोग से आपको अपने स्वभाव के अनुकूल एक रमणी मिल गई है । वह आपकी इच्छाओं की पूर्ति करे, आपका जीवन सुखमय हो, आप शांति-पूर्ण अपना समय काटें, यही इस अभागिनी की प्रार्थना उस विश्व-जननी से है, जिसने आपको और मुझे जना है ।

"मैं न कुछ लेकर आपके यहाँ आई थी, और न कुछ लेकर जाती हूँ । आपकी दी हुई सारी चीजें संदूक में बंद हैं । कृपया अवसर मिले, तो सहेज लेंगे । इस जन्म में पुनः दर्शन देने की कृपा न करेंगे ।

भवदीया—
कष्टकारिणी रमा"

  

जगदानंद के बनारस चले जाने के बाद सारे रामपुर में तहलक़ा मच गया । चमरू ने रो-रोकर राघवेंद्र प्रभृति से जगदानंद बाबू की कीर्ति की कहानी कह सुनाई । ऐसे डीपो में काम करना उसके लिये असंभव था, अतः इस्तीफ़ा देकर वह नदपुरा लौट आया । नदपुरे में चलना चमरू-ऐसे आत्माभिमानी व्यक्ति के लिये मुश्किल हो गया । खुद चमरू और उसके परिवार भीतर से खुश थे कि एक बला टली ।

वे कमोदवा-सी स्त्री के घर से चले जाने ही में अपना सुख और मर्यादा देखते थे।

धीवरी बार-बार यही ज़ोर लगाती थी कि फूलेना की दूसरी सगाई ठीक की जाय। सगाई भी प्रायः निश्चित हो गई थी। एक स्त्री, जिसके दो बच्चे थे, और हाल ही में पति ने उसे छोड़ दिया था, फूलेना के लिये ठीक हुई थी। छोड़ने का कारण बड़ा सनसनीखेज़ था। वह मन-चला था। एक चमईन कुमारी के प्रेम में पड़ उसे लेकर भूटान भाग गया था।

फूलेना स्त्रियों की पैशाची लीला का स्मरण कर काँप उठता था। पुनः विवाह करने की उसे इच्छा नहीं होती। रह-रहकर कमोदवा का चरित्र नग्नता के साथ उसकी आँखों के सामने नाचने लगता। जगदानंद और कमोदवा के विश्वास-घात की स्मृति कर उसका लहू खौल उठता था। रह-रहकर प्रतिहिंसा की भावना जाग्रत् हो उठती। इधर चमरू ने एक नाव तैयार कर ली थी। आषाढ़ आते ही अपनी डोंगी के सहारे मछलियाँ मारने लगा। फूलेना मछली बेचने में कुशल था। अतः चमरू जो मछलियाँ मारता, फूलेना राम-पुर-हाट में ले जाकर बेचता। मछली-डीपो के टूट जाने के कारण अनेक ग्राहक जो फूलना से परिचित थे, इसी से मछली खरीदते। अतः बात-की-बात में इसकी मछलियाँ बिक जातीं।

सावन का महीना था। रिमझिम-रिमझिम पानी बरस रहा

था। बादल गर्ज रहा था, और बिजली भी कौंध रही थी। इसी बीच में जगदानंद पतलून और कमीज पहने, खुले सिर साइकिल पर आ धमके। बहुत आदमियों को मछली ख़रीदते देख फूलेना के पास चले गए। फूलेना ने दो सेर मछलियाँ तौल दीं, पर प्रतिहिंसा के भाव ऐसे जोर से हिलोरें मारने लगे कि वह क्रोध के मारे तिलमिला उठा। ज्यों ही जगदानंद साइकिल पर चढ़ने लगे, उन्हें एक ऐसा धक्का दिया कि वह बड़े जोर से पत्थर पर मुँह के बल गिर पड़े। दो दाँत गिर पड़े, नाक थुरा गई, आँखों में चोट लगी, और सिर में तो बेतरह आघात पहुँचा। लहू की धारा बह चली। फूलेना द्रुतवेग से अपनी दूकान पर बैठ गया, और अफ़-सोस करने लगा कि बाबू का पाँव फिसल जाने के कारण गहरी चोट आई है।

  

जगदानंद रामपुर-अस्पताल में पड़े हैं। मुँह, नाक, आँख और सिर में पट्टियाँ बँधी हैं। लहू अधिक गिरने के कारण धनुष्टंकार की आशंका हो रही है। माथे में गहरी चोट लगने के कारण स्मरण-शक्ति कुछ ख़राब हो गई है। डॉक्टरों ने एक्स-रे लेकर बताया कि चोट भयंकर है।

एक घंटा बीता, दो घंटे बीते। देखते-देखते सूर्यास्त हो गया, पर जगदानंद घर नहीं लौटे। कमोदवा सशंक उनका बाट जोह रही थी। उसने नौकर से कहा—"कृपालु!

ज़रा बाहर जाकर देखो कि मालिक अब तक क्यों नहीं लौटे।"

कृपालु—"वह क्या बच्चे हैं, जो मैं उन्हें खोज लाऊँ। कहीं प्रीति - भोज या उद्यान - भोज में फल खाते होंगे।"

कमोदवा—"तू बड़ा निठुर है। जिसका खाते है, उसी की शिकायत करता है।"

कृपालु—"मुझे बड़ा सुख है कि मैं २४ घंटे इनकी निगरानी करता रहूँ। अधिक बोलेंगे, तो मैं भी रमा माई की भाँति इनके दरवाज़े को प्रणाम कर चल पड़ूँगा। आपको आराम है, सुख है, गहने और सुंदर-सुंदर कपड़े मिलते हैं, और रमा माई से भी अधिक इस घर में मान है, अतः आप भले इनका कुशल मनावें। मुझे तो इनके यहाँ चाकरी करते चार वर्ष गुज़र गए, पर कभी भर मुँह मुझसे बात तक न की। हमेशा इनकी भौंहें तनी रहती हैं। जली-कटी सुनाते रहते हैं। इन्हें यह भी ख़याल नहीं रहता कि मेरे भी पेट है, और आवश्यकताएँ हैं।"

कमोदवा—"कृपालु! अब रहने दो। मैंने कहा, भर पाया। मैं ख़ुद जा रही हूँ।"

कृपालु—"तब तो आप मेरा परम उपकार करेंगी। मुझे वह जीता रहने देंगे? कुत्ते से नोचवाकर मार डालेंगे। आप अब तो इस घर की सर्वेसर्वा हैं।"

कमोदवा—"क्यों मुझे तुम ग्लानि के गड्ढे में डालते रहते हो। जो मैं थी, वह तुमसे छिपा नहीं। पर मैंने तुम्हारे साथ कभी कुव्यवहार नहीं किया। आज तक मैंने तुमसे अपना कोई काम नहीं करवाया। हर दिन बरतन माँजने, घर साफ़ करने और भोजन पकाने में मैं तुम्हारी मदद करती हूँ। तुम्हें खिलाकर मैं खाती हूँ, तो भी तुम्हारा यह व्यवहार!"

कृपालु—"मुझे आपसे कोई शिकायत नहीं। पर सच तो यह है कि जिसका यह घर था, उसके लिये यह वन हो गया, और जिसका घर न था, उसके लिये स्वर्ग बन बैठा।"

❀ ❀ ❀

कृपालु जगदानंद की खोज में बाहर निकल गया, पर उसकी बातें कमोदवा के कानों में गूँज रही थीं। मैं कहीं की न रही। मेरा यह लोक तो गया ही, वह लोक भी गया। जो सम्मान एक फटी, जीर्ण-शीर्ण साड़ी पहने पतिव्रता स्त्री-समाज में प्राप्त करती है, वह हाथी पर चढ़ी कुलटा को मयस्सर कहाँ? वह भले ही गाड़ी पर चढ़े, मोटर की सवारी करे, दूध-दही छके, पक्के भवन में रहे, पर नीच-से-नीच आदमी भी उसे नफ़रत की नज़र से देखते हैं। उसके इत्र से सिक्त शरीर से दुर्नाम की सड़ी गंध निकलती है। उसकी बूटीदार, जड़ाऊ, रेशमी साड़ी दुराचार की ध्वजा-सी

लहराती है। मेरी सास की क़द्र हर जगह होती है। उनके पास धन नहीं, रूप नहीं, वेश-भूषा नहीं, पर गाँववाले सभी उनसे हर बात में राय लेते हैं। उफ़्! मैंने क्या किया। प्रलोभन में पड़ अपना जीवन विनष्ट कर दिया। मेरा इस लोक में रहना दुराचार की मात्रा बढ़ाना है, और भावी नारी-समाज के लिये नीच आदर्श उपस्थित करना है।

मैं बड़े ही सुख में हूँ, पर उनकी रखनी ही कहलाती हूँ। मेरे बच्चे वर्णसंकर कहलाएँगे। सभी उन्हें हँसेंगे। हिंदू-समाज में उनका विवाह होना कठिन हो जायगा। मैंने जवानी की उमंग में, जगदानंद के धन की आभा में पड़ बची-बचाई इज्ज़त पुनः बेच दी। उनकी स्त्री रमादेवी की मिट्टी पलीद कर दी। कितना बड़ा पाप किया।

वह इस प्रकार सोच ही रही थी कि कृपालु मन मारे, सिर झुकाए सामने खड़ा हो गया।

कमोदवा—"भाई कृपालु! कहो, उनका कहीं पता लगा?"

कृपालु—(रोता हुआ) "हाँ। वह सदर अस्पताल में बेहोश पड़े हैं। मछुए-बाजार में साइकिल से इस तरह गिरे हैं कि वहाँ से स्ट्रेचर पर अस्पताल पहुँचाए गए हैं। स्कूल के लड़कों का जमघट लगा हुआ है, पर डॉक्टर किसी को उनके पास जाने नहीं देता। तीन दिन तक ऐसी मनाही है।"

कमोद्वा—"कृपालु ! मैं उन्हें देखना चाहती हूँ। मैं जितनी सेवा कर सकूँगी, उतनी दूसरा क्या करेगा। डॉक्टर से मेरा परिचय देकर वहाँ प्रवेश करा दो, मैं तुम्हारा बड़ा उपकार मानूँगी।"

---

[११]

आधी रात का समय है। चारो ओर निस्तब्धता छाई हुई है। अस्पताल के एक कमरे में बिजली की बत्ती जल रही है। एक बिस्तरे पर जगदानंद पट्टियों का शृंगार किए आहें भर रहे हैं। उनके सिरहाने कमोदद्देवी बैठी पंखा झल रही हैं। रह-रहकर वह आँखें खोलते और बंद कर लेते हैं। ठीक एक बजे वह देखने लगे, और बोले—"कमोद, मैं कहाँ हूँ ?"

कमोदवा—"सदर अस्पताल में।"

जगदानंद—"क्यों ?"

कमोदवा—"साइकिल से गिरने के कारण।"

जगदानंद—"झूठ। फूलेना ने मुझे धक्का देकर पत्थर पर गिरा दिया था।"

कमोदवा—"क्यों ?"

जगदानंद—"तुम्हारे कारण। मैं चोट से उतना कातर नहीं, जितना ग्लानि से। भरे बाजार में पीटा गया, और खूबी यह कि किसी ने आवाज तक न उठाई। सभी मछुओं ने मेरे विरुद्ध पहले से षड्यंत्र रच रक्खा था। मेरा जीवन भारवत् हो गया। स्कूल जाता हूँ, तो वहाँ तुम्हारा ही समाचार गर्म रहता है। सारे शहर में चमरू ने मेरी शिकायत

का ढिंढोरा पिटवा दिया है। मैंने सती रमा का तिरस्कार कर बड़ा पाप किया है। जब तक इसका प्रायश्चित्त न होगा, मैं जी नहीं सकता।"

कमोद्वा—"आपके कहने का क्या आशय है ?"

जगदानंद—"मैं रमा से मिलना चाहता हूँ। जैसे हो, उसे बुला दो।"

कमोद्वा—"स्वामिन्! स्थिति बहुत नाज़ुक हो गई है। वह आपके चरित्र से नितांत असंतुष्ट हैं। आपके घर में उन्हें एक क्षण एक युग प्रतीत होता था। मैंने कई बार उनसे कहा कि मैं सेविका के रूप में इस घर में रहूँगी, पर आपके दुर्व्यवहारों से वह ऐसी क्षुब्ध हो गई थीं कि प्राण-हत्या करने पर उतारू हो गईं थीं। आपका बनारस जाना उनके जीवन का बहाना हुआ, अन्यथा उन्होंने विष खाकर प्राणों का विसर्जन करना निश्चित कर लिया था।"

जगदानंद—"तुमने मुझसे कभी इस बात की चर्चा नहीं की।"

कमोद्वा—"विरक्त चित्त पर उपदेश का प्रभाव नहीं पड़ता। उनके संबंध में आप को हज़ार समझाती, पर आप पर कुछ असर न पड़ता। कारण, आपका मन रमादेवी से हटा हुआ था।"

जगदानंद—"मेरे सिर में सख्त चोट लगी है। शायद ही मैं बचूँ। पर उस सती को एक बार देखे बिना मैं मर

भी नहीं सकता। इसलिये कृपालु को काशी भेजो। कृपालु की बात पर रमा को पूर्ण विश्वास है। कृपालु रमा के प्रति सदा सहानुभूति रखता है। वह कई बार रमा का पक्ष समर्थन करते हुए मुझसे लड़ा है। रमा का हृदय करुणा से भरा है। 'पतितोऽपि पतिः'—मैं गिरा हुआ हूँ, तो भी उसका पति हूँ। वह इस बात को समझती है।"

  

अस्पताल में जगदानंद का यह तीसरा दिन है। सिर के व्रण में पीब हो आई है। वह आधी रात से बेचैन हैं। अनाप-शनाप बोल रहे हैं। मुँह से केवल रमा-रमा की आवाज़ निकलती है। डॉक्टर के प्रश्नों का उत्तर भी वह 'रमा' शब्द के ही द्वारा देते हैं। केवल रमा ही उनके मस्तिष्क और स्मरण-शक्ति का आधार है। डॉक्टर ने कमोदवा से पूछा, रमा उनकी कौन होती है। उत्तर में कहा गया—पहली पत्नी।

डॉक्टर—"वह इस समय कहाँ हैं ?"

कमोदवा—"काशी में।"

डॉक्टर—"रोगी की भयंकर अवस्था के अवसर पर रमा का रहना आवश्यक जान पड़ता है।"

कमोदवा—"विश्वस्त नौकर देवीजी के पास भेजा गया है।"

  

रमा के पिता प्रेमनारायण काशी - कांग्रेस - कमेटी के मंत्री हैं। उनके पास हर दिन कांग्रेस की नीति की ख़बर आती है। अनेक स्त्री-पुरुष, युवक-युवती, लोक-सेवा, अछूतोद्धार, ग्राम-सुधार, स्त्री-शिक्षा, निपढ़-शिक्षा आदि के प्रश्न लेकर प्रेमनारायणजी के पास आया करते हैं। रमा के सामने ही प्रेमनारायणजी सभी प्रश्नों पर विचार करते हैं। काशी में उन दिनों निरक्षर स्त्री-पुरुषों को साक्षर बनाने के लिये अनेक शिक्षा-केंद्र खोले जा रहे थे। रमा ने भी एक केंद्र में अध्यापिका के काम करने की उत्कट इच्छा प्रकट की। सार्वजनिक कामों की ओर रमा की दिलचस्पी देखकर प्रेमनारायणजी ने तालमंडी की वेश्याओं की शिक्षा का भार रमा पर सौंपा।

रमा को पहले दिन तो निराशा का सामना करना पड़ा। बड़ी कठिनाई से दो वेश्याएँ पढ़ने आईं, और सबने यही कहा कि पढ़-लिखकर हम क्या करेंगी? पर रमा की सहृदयता, पढ़ाने की अद्भुत शैली, मन की पवित्रता, कार्य करने की क्षमता देखकर तालमंडी की अनेक वेश्याएँ उसके केंद्र में पढ़ने आने लगीं। शिक्षा प्रारंभ होने के पहले रमा प्रार्थना कराती थी। प्रार्थना सरल थी—

"असतोमा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय।"

शिक्षा के अंत में वह स्त्री-जाति के अधिकार पर एक व्याख्यान देती थी। उसके व्याख्यान का आशय यही रहता

था—"भारत की स्त्रियाँ अपनी अलग सत्ता नहीं रखतीं। वे पुरुषों के स्वार्थों की पूर्ति के साधन हैं। जब तक पुरुष चाहता है, उन्हें अपने साथ रखता है, और जब उसे स्त्री-विशेष से रुचि नहीं होती, उसे निरादृत कर दूसरी स्त्री को अपना लेता है। स्त्री के साथ उसका मनमाना व्यवहार होता है। जब तक एक स्त्री में सुंदरता रहती है, जवानी रहती है, लावण्य रहता है, पुरुष-स्वार्थों की पूर्ति का माद्दा रहता है, तब तक तो वह पुरुष की प्रीति की परम-पात्री बनी रहती है, इनके अभावों में वह घृणा की वस्तु बन जाती है।

"पुरुष-समाज इतना पतित है, उसके नियम इतने दूषित हैं कि स्त्री के लिये उनके पास न्याय नहीं। पुरुष विवाहिता स्त्री की अवहेलना कर कुलटा के प्रेम में फँस जाता है, समाज चूँ नहीं करता। पर उसकी स्त्री यदि वही काम करे, तो समाज उसके विरुद्ध खड़ा हो जाता है। आप लोगों ने अपना जीवन स्वच्छंद बना रक्खा है। आप किसी पुरुष की दासी नहीं। आप पुरुषों को ही अपना दास बना लेती और उनके साथ मनमाना व्यवहार करती हैं। जब तक उनसे आपका स्वार्थ सधता है, तब तक आप उन्हें अपने साथ रखती हैं। ज्यों ही स्वार्थ में बट्टा लगता है, आप उन्हें फ़टकार बताती हैं। आप पुरुष-समाज के प्रति वही काम करती हैं, जो पुरुष-समाज साधारण स्त्री-जाति के प्रति करता है।

"पर याद रक्खें, समाज आपको घृणा की नजर से देखता है। आपकी गणना निंदित स्त्रियों में होती है। समाज में आपको कोई स्थान प्राप्त नहीं। आप ही उपेक्षित नारी-जाति हैं। इस प्रश्न पर आपने कभी ठंडे दिल से विचारा? मेरी दृष्टि में बात ऐसी जान पड़ती है कि आपमें संघ-शक्ति का अभाव है, और लोक-मत का राहित्य। आप अपनी संगठित आवाज पुरुष-समाज के प्रति उठा नहीं सकतीं। इसलिये आप एक संघ का संस्थापन करें, और उसकी रजिस्ट्री करा लें। सभी वेश्याएँ संघ के नियम-सूत्रों में गुँथ जायँ।"

इतना कह रमादेवी वेश्याओं की ओर ताकने लगीं।

वेश्याएँ—"बहन! कृपया संघ के नियम बना दें। हम लोग अक्षरशः उनका पालन करेंगी। आप बहुत ठीक कह रही हैं।"

रमादेवी—"आपके संघ के निम्नस्थ नियम हों—

(१) जो पुरुष किसी वेश्या से प्रेम करना चाहे, उसे सर्वप्रथम वेश्या-संघ का सदस्य बनना पड़ेगा।

(२) उसे वेश्या-संघ के प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करना पड़ेगा कि वह अमुक वेश्या से अपना जीवन संबद्ध करता है।

(३) वह यह वादा करता है कि वेश्या के प्रणय का परिणाम जो संतान या संतति के रूप में होगा, उसके भरण-

पोषण, शिक्षा-दीक्षा और विवाह आदि का सारा उत्तर-दायित्व उस पर होगा।

(४) यदि वादे की पूर्ति करने में आना-कानी करे, तो वेश्या-संघ अदालत में उस पुरुष पर नालिश कर उससे भृति वसूल कर ले।

इसका फल यह होगा कि कोई पुरुष आप पर अन्याय न करेगा, और समाज में कुछ वर्षों बाद आपका वही स्थान होगा, जो अन्य प्रतिष्ठित स्त्रियों को प्राप्त है। मेरा तो विश्वास है, आपका स्थान नारी-समाज में और भी ऊँचा होगा। कारण, आप आज भी पुरुषों को मिट्टी का पुतला समझती हैं।"

रमा के उपदेशों से वेश्या-मंडली में क्रांति पैदा हो गई। वेश्याओं ने सभा कर एक संघ क़ायम किया। प्रेमनारायण-जी के परामर्श से संघ का नाम रमणी-स्वत्व-संरक्षक संघ रक्खा गया। बात-की-बात में संघ ने अपने नियमों को कार्यान्वित करना शुरू किया।

समग्र बनारस में तहलक़ा मच गया। कोई भी काशीवाल शरीफ़ रमणी-स्वत्व-संरक्षक संघ के प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करना नहीं चाहता था। वह वेश्या-पुत्र को अपनी जायदाद का उत्तराधिकारी बनाना नहीं चाहता था। अतः वेश्याओं ने बॉयकाट किया। किसी आदमी को अपने द्वार पर आने नहीं देतीं। उन्होंने अपने संघ के मंत्री को अन्य नगरों में

भेज वहाँ भी संघों की स्थापना की। स्वयं रमादेवी अन्य शहरों में जातीं और वेश्याओं की विचार-धारा में परिवर्तन उपस्थित करतीं।

जिस समय कृपालु काशी पहुँचा, उस समय रमादेवी लखनऊ में थीं। अखिल भारत-रमणी-स्वत्व-संरक्षक संघ का असाधारण अधिवेशन उनके सभानेतृत्व में हो रहा था। कृपालु जिस समय लखनऊ पहुँचा, उस समय आवेश में रमादेवी का व्याख्यान हो रहा था—"बहनो! आपमें और कुल-कामिनियों में क्या अंतर है? आप भी रजो वीर्य से पैदा हुई हैं और वे भी। आपके शरीर भी मांस, लहू, मेद, मज्जा और हड्डी से बने हैं, और कुल-वधुओं के शरीर भी इन्हीं उपकरणों के परिणाम हैं। आपमें भी प्रणय करने की प्रवृत्ति है, और उनमें भी। तब क्या कारण है कि समाज में आपकी स्थिति दयनीय है? इसका कारण आपका अपने जन्म-सिद्ध अधिकारों की ओर से उदासीन रह पुरुषों को स्वच्छंदता प्रदान करना है।

"आप उठ रही हैं, अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिये सचेष्ट हैं, स्वार्थी पुरुषों को ठुकराने के लिये दृढ़-संकल्प हैं, यह देख मेरे हर्ष का पारावार नहीं। कुछ लोग कहा करते हैं कि पुरुष वेश्याओं के पास न जायँ, तो वे भूखी मरेंगी। पर बहनो! याद रक्खें, भारत की या दुनिया की सभी स्त्रियाँ जब अपने पेट का सवाल हल कर

सकती हैं, तो क्या आप एक बालिश्त पेट का सवाल हल नहीं कर सकतीं ?

"भारत-ऐसे दरिद्र देश के लिये आवश्यक है कि स्त्रियाँ ब्रह्मचारिणी बनें, भिक्षुकी बनें, त्यागिनी बनें। जन-संख्या बहुत बढ़ रही है। यह जहाँ तक घटे, उतना ही श्रेयस्कर है। स्वयं मैं भिक्षुकी बनी हूँ। या तो आप लोग ब्रह्मचर्य-व्रत धारण कर समग्र वेश्या-जाति को नेस्तनाबूद कर दें, या पुरुषों को, धनियों को, पूँजीपतियों को, मठाधीशों को और मंदिर के पुजारियों को अपने चरणों का दास बना स्त्री-समाज का एक अंग बन जाइए। इस समय आपके सामने सदा के लिये मर मिटने और स्थित रहने का विकट प्रश्न उपस्थित है।"

सारी सभा ने रमादेवी के उपदेशों के अनुकूल काम करने का संकल्प किया। स्वयं कृपालु रमा का कार्य देख चकित हो गया। उसकी इच्छा हुई कि रमा के चरणों की सेवा करता हुआ वह अपने जीवन की संध्या शेष कर दे। पर दूत के आचरण की पवित्रता महसूस करता था, इसलिये सारी बातें रमा से कह सुनाईं।

रमा के सामने दो प्रश्न उपस्थित थे—जगदानंद के जीवन की रक्षा और समग्र वेश्या-जाति का उद्धार। जगदानंद की कलुषित आत्मा का उद्धार बनाम वेश्या-समुदाय की आत्माओं के परित्राण का जटिल मामला उसके सामने पेश था। उसकी

न्यायी आत्मा ने यही फ़ैसला किया कि एक-दो दिन के लिये संघ के कार्य से फ़ुरसत लेकर एक डूबते जीव को करावलंब देना अनुचित न होगा। रमादेवी लखनऊ से आगरा जानेवाली थीं। वहाँ न जा वह सीधे बनारस लौट आईं।

  

जगदानंद की बीमारी का यह छठा दिन है। अवस्था नाज़ुक होती जा रही है। पीब भीतर-ही-भीतर बढ़ती जा रही है। ऑपरेशन करने की राय डॉक्टर दे रहे हैं। केवल रमा की प्रतीक्षा की जा रही है। थोड़ा विलंब भी जगदानंद के जीवन का विघातक समझा जा रहा है। पर कोई उत्तरदायित्व लेने पर तैयार नहीं। कमोदवा ऑपरेशन का नाम सुनते ही काँप उठती और रोने लगती है।

जगदानंद ने अपना अंत आता देख अपने मित्र वकील मनमोहन चटर्जी को बुलाकर एक विल (will) तैयार कराया, और अपना हस्ताक्षर कर वकील साहब को सुपुर्द कर ऑपरेशन के लिये अनुरोध किया।

रमादेवी ठीक उसी समय अस्पताल में पधारीं, जिस समय जगदानंद का ऑपरेशन हो रहा था। ऑपरेशन खत्म भी नहीं होने पाया था कि डॉक्टरों के चेहरे पर विषाद की रेखा झलक उठी। वे औजारों को टब में रख बाहर निकल पड़े।

कृपालु ने सशंक पूछा—"सरकार ! जगत् बाबू का ऑपरेशन ख़त्म हो गया ?"

डॉक्टर—"बाबू ही खत्म हो गया।"

इतना सुनना था कि कृपालु गला फाड़कर रोने लगा। कमोदवा भी छाती पीटने लगी। पर रमा के मुँह से एक शब्द भी न निकला। उसने बड़े ग़ौर से पति का शरीर देखा। उनके चरणों पर अपना माथा टेका। विलंब के लिये क्षमा की याचना की। पुनः डॉक्टरों की अनुमति ले, लाश उठवाकर कालीघाट ले गई। श्मशान-घाट पर शास्त्रीजी के सभी मित्र पधारे थे। पंडित दीनबंधु ने शास्त्रोक्त रीति से दाह-क्रिया करवाई। राघवेंद्र ने लकड़ी की व्यवस्था की। चटर्जी ने बिल की बातें सबको सुनाईं। रमादेवी ने अपने हिस्से का धन रमणी-स्वत्व-संरक्षक संघ को अर्पित कर दिया, इस शर्त पर कि संघ उसके प्रदत्त धन के सूद से वेश्याओं की संतानों की शिक्षा का खर्च चलावे।

❀ ❀ ❀

कमोदवा को मछुए-टोलीवाला मकान मिला, और छ हज़ार रुपए नक़द। वह अपने नए मकान में आकर मछली ख़रीद-फ़रोख़्त का काम करने लगी। मछुओं से थोक में मछलियाँ ख़रीदती और अपने डीपो में उन्हें बेचती। उसे अच्छी बचत होती। अब उसे विलास-पूर्ण जीवन की आकांक्षा नहीं रही। वह रमा के त्याग से, उसके साधु जीवन

से, उसके आत्मिक बल से, उसकी परदुःखकातरता से, उसके धैर्य से काफ़ी सबक़ सीख चुकी थी। उसने अपने मुहल्ले में मछुओं की कन्याओं के पढ़ने के लिये एक स्कूल खोलवा दिया। डीपो की आमदनी के कुछ भाग से वह स्कूल चलता था। असहाय मछुओं के बच्चों को वह भोजन-वस्त्र भी दिया करती थी। कमोदवा की उदारता की ख़बर हर दिशा में फैल गई। मछुए कमोददेवी को आदर की दृष्टि से देखने लगे। अनेकों की जीविका कमोदवा के डीपो से चलती थी। फूलेना को भी कमोदवा के चरित्र-परिवर्तन की ख़बर मिल चुकी थी। वह पुनः उस ओर आकृष्ट हुआ। पहले तो वह अपनी मछलियाँ कमोदवा के डीपो में नहीं ले जाता था। डीपो में सस्ती दर से मछलियों की बिक्री होने के कारण उसे कभी दिन-दिन-भर बैठे रहना पड़ता था। किसी दिन तो मछलियाँ बिकती ही न थीं। वह कमोदवा को सौ-सौ गालियाँ मन-ही-मन देता। पर अन्य मछुओं के कहने-सुनने पर वह अपनी मछलियाँ वहीं ले जाने लगा।

दो-चार दिन तक तो कमोदवा गंभीर रही, कुछ नहीं बोली, पर हर दिन फूलेना के चेहरे का अध्ययन करती। फूलेना सदा कमोदवा की ओर ताकता और बोलने की ख़्वाहिश रखता, पर कमोदवा उसे अवसर न देती। एक दिन कमोदवा ने फूलेना को डीपो-ऑफ़िस में बुलाया, और उसे प्रणाम कर कुर्सी पर बैठाया। फूलेना कुछ बोलना चाहता था कि कमोदवा खड़ी होकर बोली—

"प्रिय स्वामी ! जगदानंद को मरे एक वर्ष से भी अधिक हुआ। तुमसे मेरे चरित्र की कोई बात छिपी नहीं है। यदि मैं चाहती, तो किसी भी योग्य मछुए का पाणिग्रहण कर सकती थी। पर मेरी एकमात्र इच्छा यही है कि इस सारी संपत्ति को तुम्हारे चरणों पर अर्पित कर मैं आत्महत्या कर लूँ। यह मेरी कुंजी है, और ये सारी जायदाद के काग़ज़। तुम इन्हें स्वीकृत करो, और मैं सहर्ष इस लोक से बिदा हो जाऊँ। प्राणधन, एक बार आपने मेरे अपराधों को क्षमा कर अपनाया था। आज इस भिखारिन की यह संपत्ति अपना लो। इस जीवन का मेरा अरमान पूरा हो जायगा।"

कमोदवा की दर्द-भरी और अंतः से निकली बातें सुनकर फूलेना का जला कलेजा ठंडा हो गया। संसार में धन बड़ा ही आकर्षण रखता है। जिसके पास धन होता है, उसके दोष भी गुण समझे जाते हैं। धन के कारण कुरूप सुंदर समझा जाता है। भद्दा और कलुषित आदमी भी धन के बल से आदर्श मनुष्यों में परिगणित होता है। फूलेना विचारशील था, पर उसमें इतना आत्मिक बल न था कि वह इस प्रलोभन से अपने को बचा सकता।

उसने अपनी मूकता से सूचित किया कि फूलेना उसका वही फूलेना है। आज तक अविकृत है।

  

फूलेना अब स्वयं डीपो का मालिक हो गया। ग़रीब आदमी अमीर भी हो जाता है, तो भी उसे बुरे दिन भुलाए नहीं भूलते। वह आलस्य को अपने समीप फटकने नहीं देता। उसमें कार्य करने की क्षमता पूर्ववत् बनी रहती है। फूलेना इसी कोटि का आदमी था। वह हर दिन नदपुरे से रतनपुर मछली लिए आता। कमोदवा के डीपो में बेचता। एक-दो नोकर इसके अधीन काम करते। शाम को मछलियों का मूल्य लेकर वापस जाता। वह अपने को कमोदवा का नौकर समझता। एक-दो रुपए कमोदवा हर दिन उसे चमरू के परिवार के खर्च के लिये देती। फूलेना ने डीपो-ऑफ़िस की घटना का कहीं भी उल्लेख नहीं किया। पर जिस दरिद्र परिवार की दो-चार रुपयों की दैनिक आमदनी हो, उसकी आर्थिक अवस्था अति शीघ्र दुरुस्त हो जाती है। दो-चार महीने के भीतर चमरू की स्थिति सुधर गई। उसने ऋण चुकता कर दिया। दो बैल खरीदे। गृहस्थी का काम कलटू चलाने लगा। धीवरी घर का सारा काम साधती, और चमरू नाव का। फूलेना ऊपर की आमदनी करता, चमरू अब दूसरों की चीज़ें गिरों रखता। हर दिन एक-न-एक चीज़ इसके यहाँ बंधक रक्खी जाती। कोई बटलोही रखता, तो कोई तसला, कोई कर्णफूल, कोई बाजू और कोई कड़ाही। दस रुपए की चीज दो-तीन रुपए पर गिरों रक्खी जाती। आना रुपया दैनिक सूद चलता। महीने या डेढ़ महीने का क़रार

रहता। वादे पर जो चीजें न छूटतीं, चमरू की हो जातीं। इस प्रकार चमरू का झोपड़ा बरतनों से भर गया। कमोदवा ने एक और हल बढ़ाने के लिये चमरू को ४०) दिए। कस-कर खेती होने लगी। काफ़ी पैदा होने लगा। बाहरी आमदनी थी ही। एक वर्ष के भीतर चमरू नदपुरे में एक संपन्न आदमी गिना जाने लगा।

कमोदवा नदपुरा भी आने-जाने लगी। घरवाले सभी उसकी इज्ज़त करने लगे। कमोदवा ने भी अपना जीवन फूलेना पर न्योछावर कर दिया। उसने एक मिट्टी का अच्छा मकान तैयार करने के लिये चमरू को २००) दिए। माघ से चैत तक चमरू और उसके परिवार ने अपने हाथों से चारो ओर की दीवारें तैयार कर दीं। समीपवर्ती पहाड़ों से लकड़ी और बाँस बैल-गाड़ियों द्वारा मँगाए गए। वैशाख में एक अच्छा खपरैला मकान साहबान के साथ तैयार कर लिया गया।

  

आज वैशाख की पूर्णिमा है। चमरू के यहाँ बड़ी चहल-पहल है। इसकी बिरादरी के लोग जुटे हुए हैं। कच्ची-पक्की रसोई की तैयारी है। सारे धीवर मौजूद हैं। तीन दिन तक चमरू ने सबों का हाथ धुलाया। अनेक बिरादरों को कपड़े दिए। दीनबंधु पंडित ने भागवत-पुराण की कथा कही। इन्हें भी पूरी दक्षिणा मिली। ब्राह्मण-भोजन हुआ। दिल खोलकर

चमरू ने ख़र्च किया, और कमोदवा पुनः जाति में हो गई।

चमरू ने फूलेना को एक और राय दी कि वह रामपुर में एक मोटिया कपड़ों की दूकान खोले। धीवर मोटिया कपड़े ही अधिक पसंद करते हैं। यह दूकान भी मछली-डीपो का एक भाग समझा जायगा। बस फिर क्या था। एक मोटिया कपड़े की दूकान खोली गई। ख़ुद चमरू दूकान में बैठता और कपड़े बेचता। इस दूकान की एक और विशेषता थी। देहातों के बने कपड़े ही यहाँ बेंचे जाते थे। फूलेना देहातों में घूम-घूमकर अनेक रंग के सूत जुलाहों को देता और रंग-बिरंगे कपड़े उनसे तैयार करवाता। उन्हें करघे वग़ैरा भी देता। जो जुलाहा अच्छा बुनता, उसे इनाम भी देता। इसका परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही समय में चमरू की दूकान रामपुर में मोटिए कपड़े के लिये विख्यात हो गई। यह मोटिए कपड़े के कुरते, टोपी, कमीज़, आधी कमीज़, गंजी तैयार कराता और सस्ते दामों पर बेचता।

चमरू की धाक ऐसी जम गई कि इसकी दूकान के मोटिए कपड़े झरिया, ससराम, बक्सर, आरे, आसनसोल भी जाने लगे।

चमरू ने एक बड़ी कोठी रामपुर में तैयार करा ली। कमोदवा यहीं रहती है। वह अब माता हो गई। उसके एक बड़ा सुंदर, हृष्ट-पुष्ट बच्चा पैदा हुआ है। आज इसके उद्योग

और फूलेना की कर्तव्यपरायणता से सैकड़ों जुलाहे, अनेक दर्जी, प्रचुर धोबी और धीवर अपनी जिंदगी खुशी से बसर कर रहे हैं। कलट्टू ने खेती में खूब तरक्की की। सैकड़ों बीघों में इसके हल आज नदपुरे में घूमते हैं।

---

[१२]

दीर्घकाय का जेल-जीवन तो पहले बड़ा ही कष्टकर प्रमाणित हुआ। वह दिन ब दिन कृश-गात्र होता गया। जेल का खाना, रहना, पहनना और नियम, सब उसके चित्त के विरुद्ध थे। न वह किसी को पसंद करता, और न जेल का कोई आदमी उसे चाहता। बात-की-बात में वह घुड़कियाँ सहता, कोड़ों की मार खाता और गालियाँ सुनता। बेड़ियों की झंकार से उसके कान की झिल्ली फट जाती, और सिपाहियों की कड़ाई से हृदय के तार टूट पड़ते।

एक दिन चक्की पीस रहा और मौत का आह्वान कर रहा था। सहसा इसकी नजर रामपुर-डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड के चेयरमैन जलेश्वरप्रसाद पर पड़ी। उनके साथ वायस चेयरमैन साहब कुंजविहारी साहु भी थे। उन्हें जेल में देख बड़े अचंभे में पड़ा कि ऐसे लोग भी जेल की बहार लूटते हैं। शाम को हाजिरी के वक्त उसने प्रांतीय गवर्नमेंट के प्रधान मंत्री श्रीकृष्णसिंह, अर्थ-सचिव बाबू अनुग्रहनारायणसिंह आदि को भी देखा। यह देख इसके आश्चर्य का अंत न रहा। इसने रामपुर में गुजरे दिन बाबू श्रीकृष्णसिंह का शाही स्वागत देखा था। बड़े-बड़े हाकिम और ओहदेदार उनकी सेवा में हाजिर

थे। रामपुर के सभी जमींदार हाथ जोड़े उनके आगे अपनी नाक रगड़ रहे और दुःख हो रहे थे। जेलर और जेल के अन्य कर्मचारियों की तो इनके नजदीक पहुँच ही न थी। पर हाय दिनों के फेर! हा नियति की क्रूरता! हा क़ानून, अजीब तेरी बलिहारी! न्याय! तू सबों को एक नजर से देखता है। तेरी दृष्टि में आम और नीम एक है। तू बाघ और बकरियों को एक घाट पर पानी पिलवाता है।

परेड के बाद भोजन की बारी आई। दीर्घकाय सोचता था कि आज वह खुशी से धट्टा बाबू श्रीकृष्णसिंह वग़ैरा के साथ खायगा। पर उसे निराशा का सामना करना पड़ा। जेल में भी बड़ाई और छोटाई के अनुरूप व्यवहार होता है। नरक और स्वर्ग सभी स्थलों में कर्म के अनुसार ही फल मिलते हैं। संसार में एक स्वच्छंद है और दूसरा परतंत्र, एक पूड़ियाँ और जलेबियाँ खाता है, और दूसरा एक मुट्ठी सत्तू भी नहीं पाता। जेल में भी एक क़ैदी कुर्सी पर बैठा रहता है, अखबार और किताबें पढ़ता है, और अन्य मनोविनोद करता है, तो दूसरा मोरब्बा पीटता है, रस्सी बाँटता है, पानी भरता है, कोल्हू पेरता है, रसोई बनाता और खेत गोड़ता है। यह विषमता क्यों?

इन भिन्नताओं का कारण इसे आज स्पष्ट मालूम हुआ। जो पढ़ा-लिखा है, उसे जेल में भी पढ़ने-लिखने का काम मिलता है, जो उद्योग-धंधे में निपुण है, वह कपड़ा बुनता

है, मोढ़ा और कुर्सी तैयार करता है। जो देश-प्रेम और राष्ट्रीय आंदोलनों के कारण जेल आते हैं, वे यहाँ भी सम्मान के पात्र बने रहते हैं। जो हमारे-ऐसे हत्यारे हैं, उन्हें लहू बहाना पड़ता है। दीर्घकाय इसी उधेड़-बुन में मस्त था कि धूम्रकेतु मुरब्बे की रस्सियाँ सिर पर लिए आया, और दीर्घकाय के नजदीक पटका।

दीर्घकाय—"धूम्र! तुमने ठीक कहा था कि जेल साधना-भूमि है। कुत्सित कर्मों के प्रायश्चित्त करने का उपयुक्त स्थान है।"

धूम्रकेतु—"मालिक! यदि मनुष्य अपनी जिंदगी आत्म-हत्या द्वारा खो दे, या सूली पर चढ़ प्राण त्यागे, तो उसकी आत्मा शुद्ध नहीं हो सकती। वह तभी शुद्ध होता और अपने किए पापों से छुटकारा पाता है, जब वह अपने किए कर्मों के लिये आंतरिक अनुताप प्रकट करता है, स्वयं यंत्रणाओं को सहता और गिराए हुए लहू के बदले अपना लहू गिराता है।"

दीर्घकाय—"तुम्हारे विचार वस्तुतः ठीक हैं। तभी तुम स्वस्थ, हृष्ट-पुष्ट और प्रसन्न देख पड़ते हो। मेरे लड़के भी तुम्हारी भाँति इस जीवन पर निगाह डालते हैं। मैं भी इसी दृष्टि-कोण से उस शांति और सुख की खोज करूँगा, जिससे जीवन-भर वंचित रहा।"

धूम्रकेतु—"मालिक! कल नदपुरे से एक चिट्ठी आई है।"

दीर्घकाय—"नदपुरे में मेरे लिये रक्खा ही क्या है ?"

धूम्रकेतु—"ठीक है, पर वही तो जन्म-भूमि है, जिसकी बराबरी स्वर्ग भी नहीं कर सकता। आपको एक बात सुनकर निहायत खुशी होगी।"

दीर्घकाय—"वह क्या ?"

धूम्रकेतु—"इन दिनों हरदेव और जंगबहादुर में घोर तनातनी चल रही है। हरदेव ने सारे नदपुरे को जंगबहादुर के बरखिलाफ़ खड़ा कर दिया है।"

दीर्घकाय—"कौन बात लेकर ?"

धूम्रकेतु "यही कि नदपुरे में जंगबहादुर की कोई जमीन बकाश्त नहीं है। वह मालगुज़ारी का भागी है।"

दीर्घकाय—"रैयतों की यह सरासरी धींगाधींगी है। नरेंद्र की सारी ज़मीन बकाश्त है। उनके खाते में रैयत तो बराय-नाम हैं।

  

हरदेव के बहकावे में पड़कर जंगबहादुर की रैयतों ने उसके बकाश्त खेत पर हल चला दिए। नरेंद्र को मरे हुए एक वर्ष भी न हो पाया था कि उसके खेत अनाथों के खेत-से लूटे जा रहे हैं। किसानों ने धड़ाधड़ जंगबहादुर के खेतों में उरद, बराई, सावाँ, गोंदली, मूँग, मकाई और अरहर बोकर मूछ पर ताव देना शुरू किया। जंगबहादुर जहाँ कहीं अपना हल चलाने लगता, वे जमात बाँधकर आते

और उसे रोक देते। चमरू धीवर को छोड़कर सारे नदपुरे ने ईमान खो दिया। कितने किसानों ने जंगबहादुर के खेत में झोपड़े खड़े कर दिए। सभी एक मत से कहते कि नदपुरे में भांडार छोड़कर जंगबहादुर का एक कट्ठा खेत भी बकाश्त नहीं है।

विपत्तियाँ अकेले नहीं आतीं, वरन् गरोह में। जंगबहादुर का बाप मरा, बाबा चल बसे, खेत लूटे जा रहे हैं, और जीवन पर भी आ पड़ी है। गाढ़े दिनों में मित्र भी शत्रु बन जाते हैं। दुनिया का एक हिस्सा किसी भले आदमी को कष्ट में देखकर प्रसन्न होता है, तो दूसरा सहानुभूति प्रदर्शित करता है। दुष्टों की बन आती है। वे मीठी चुटकियाँ लेने लगते हैं। पर सज्जनों के हृदय भले मनुष्य को तकलीफ़ में देखकर पिघल जाते हैं। वे तन से, मन से, धन से, बुद्धि से, परामर्श से विपद्ग्रस्त व्यक्तियों की सहायता करते हैं। चमरू इसी वर्ग का आदमी है। उसके परामर्श से जंगबहादुर रामपुर जाता है, उसके रुपयों से वकीलों की फ़ीस देता है, और उसके सहारे नदपुरे में टिका हुआ है। वकीलों ने जंगबहादुर के सर्वे खेवट, खतियान, पर्चे आदि देखकर राय दी कि जंगबहादुर की जमीन कोई नहीं ले सकता। पर उसे जमीनों के लिये बहादुरी से जंग छेड़ना पड़ेगा।

वकील—"जंगबहादुर बाबू, आप पाँच या छ पहलवान रक्खें। बोए हुए खेत काट लें। जो रैयत आपकी जमीन

पर आवें, उन्हें मार भगावें।" चमरू की ओर देखकर वकील ने कहा—"क्यों बुड्ढे बाबा ! तुम तो जंगू की मदद करोगे ?"

चमरू—"मैं सभी प्रकार से इनकी सहायता के लिये तैयार हूँ।"

  

बराई पक चुकी थी। सवाँ तैयार था। गोंदली झर रही थी। साठी धान भी पकने पर था। रैयतों और जंगबहादुर की ओर से कटनी की पूरी तैयारी हो रही थी। एक ओर नदपुरे के १०८ किसान और दूसरी ओर जंगबहादुर के छः सशस्त्र पहलवान। बलवा निश्चित था। पुलिस में गाँव के चौकीदार ने इत्तिला दी। पुलिस दौड़ पड़ी।

खेत पर चढ़ने के पूर्व ही जंगबहादुर ने चमरू दादा की सलाह से दारोग़ा के हाथ गर्म कर दिए। उधर से इशारा पा जंगबहादुर के आदमी सवाँ काटने और बराई तोड़ने लगे। किसानों ने 'हर हर महादेव' का नारा लगा ज्यों ही खेत की ओर बढ़ना शुरू किया कि सशस्त्र पहलवानों की लाठियाँ उनकी पीठों पर पड़ापड़-पड़ापड़ पड़ने लगीं। उनके पाँव उखड़ गए। वे भाग चले। दारोग़ाजी के घोड़े की टापें सुन पड़ीं। रैयत सभी खड़े हो गए, और रो-रोकर कहने लगे कि उनकी रैयती ज़मीन जबरदस्ती लूटी जा रही है।

दारोग़ा राघवेंद्र ने रोब गाँठकर कटनी बंद कर दी, और पहलवानों को धमकाया। दोनो पार्टियों को अपना-अपना काग़ज़ी सबूत पेश करने के लिये हुक्म दिया। जंगबहादुर ने खेवट, खतियान तथा अन्य काग़ज़ दाख़िल किए। चमरू धीवर की गवाही कराई। पर रैयतों के पास न तो रसीद थी, और न पर्चे। केवल ज़बानी जमा-ख़र्च से क्या होने-वाला था।

दोनो ओर का सबूत देख दारोग़ा राघवेंद्र ने कड़ककर कहा—"किसानो! तुम लोग फ़ौरन् ज़मीन पर से हट जाओ। तुम्हें एक इंच ज़मीन नहीं मिल सकती। तुम लोगों ने बिना कारण बग़ावत करने का निश्चय किया था, इसलिये तुम लोगों के मुखियों का मैं चालान करता हूँ।"

दारोग़ा की बात सुनकर किसानों के चेहरों पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। उनके सारे मनसूबे ठंडे हो गए। वे अपना-सा मुँह लिए घर लौटे। हरदेव और उसके भाइयों के मुँह में कालिख पुत गई। रैयतों ने अपने प्रधानों की रक्षा के लिये दारोग़ा की द्रव्य से पूजा की।

जंगबहादुर विजयी हुआ, पर उसने अपनी विजय पर हर्ष नहीं प्रकट किया। उन किसानों से घृणा न की। वह उनसे प्रेम से मिलता, बातें करता, उनके सुख-दुख में शरीक होता। उसका मिलनसार स्वभाव देखकर किसान भी दिल खोलकर उससे मिलने लगे। कुछ दिनों बाद जंगबहादुर

ने निपढ़ किसानों के पढ़ने के लिये रात में एक स्कूल खोला। जंगू स्वयं उन्हें पढ़ाने लगा। जो पढ़-लिख जाते, उन्हें और निपढ़ों को पढ़ाने के लिये विवश करता। इस प्रकार छ महीने के भीतर सारा नदपुरा प्रायः साक्षर हो गया।

दूसरा काम जो जंगू ने किया, वह संकीर्तन-दल का निर्माण था। प्रत्येक रविवार को गाँववाले ब्रह्मदेवता-टाँड़ के वटवृक्ष के नीचे जमा होते। वहाँ मृदंग, सारंगी, मजीरे, ढोलक बजते। सभी "हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे" के नारे लगाते। "हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे" की ध्वनि से ग्राम-वायु-मंडल गूँज उठता। संकीर्तन के बाद जंगू एकता, भ्रातृत्व, आचरण की पवित्रता पर वक्तृता देता। कभी-कभी रामपुर से पं० दीनबंधु और रामपालसिंह को भी बुलवाता, और उनसे उपदेश दिलवाता।

इन संस्थाओं का ऐसा प्रभाव गाँववालों पर पड़ा कि सभी एक दूसरे से प्रेम करने लगे। केवल हरदेव और उसके भाई ग्राम-सुधार से दूर किनारे रहते। समय-समय पर गाँववालों को भी उभाड़ने की कोशिश करते थे। मनुष्य विवेकशील जंतु है। उसे भलाई-बुराई का पूरा ज्ञान है। मनुष्येतर जंतु बिल्ली भी जब एक बार दूध से जल जाती है, मट्ठा फूँककर पीती है। सारी जनता की समझ में यह बात आ गई कि हरदेव और उसके भाई-भतीजे बड़े

मक्कार हैं। उनका स्वभाव दूसरों का अपकार करना है। कलमपुर इन्हीं के पापों का फल अभी तक भोग रहा है। हरदेव और उसके बहकावे में पड़ कलमपुर के चार आने का ठेकेदार बलभद्र पांडेय आज निहंग-लाड़ला हो गया है। उसके लड़के भिखारी हो गए हैं। जिस बलभद्र के यहाँ अगहन में पाँच सौ मन धान होते थे, उसका लड़का मनोहर अब दाने-दाने का मुहताज है। हरदेव ने बलभद्र को उसकाकर नरेंद्र के पिता के साथ घोर लड़ाई करवाई, और बलभद्र को नष्ट कर उसकी सारी ठेकेदारी की जमीन अख्तियार कर ली। इन बातों से वाक़िफ़ हो जाने पर कोई हरदेव की ओर ताकता भी न था।

नदपुरे-ग्राम में सुधार का काम जारी रहा। कमोदवा इसमें बड़ी दिलचस्पी रखती थी। उसने गाँव की स्त्रियों को अनेक रोगों से ग्रस्त देख उनके उद्धार की कामना से धात्री-परीक्षा पास की। आयुर्वेद और होमियोपैथी का भी काफ़ी ज्ञान प्राप्त कर लिया। नदपुरे में एक स्थायी भवन के निर्माण के लिये जंगबहादुर को पाँच हज़ार रुपए दिए। गाँववालों ने पहले ही से एक मिट्टी का भवन ब्रह्मदेवता-टाँड़ पर बना रक्खा था। इसे वे ग्राम-भांडार के नाम से पुकारते थे। हरएक फ़सल के समय प्रत्येक किसान एक-एक मन अन्न दिया करता था। स्वयं जंगबहादुर पचीस मन धान और पचीस मन गेहूँ-जौ दिया करता था। संगृहीत अन्न से गाँव के

अनाथों, असहायों और विधवाओं की उदर-पूर्ति और वस्त्रादि के प्रश्न हल किए जाते थे। ऐसे अनाथों और असहायों की कमी न थी। दीर्घकाय तथा धूम्रकेतु के परिवार के अतिरिक्त अन्य गाँवों की विधवाएँ और असहाय भी ग्राम-भांडार से सहायता प्राप्त करते थे।

  

काल-क्रम से नदपुरे-गाँव का ब्रह्मदेवता-टाँड़ एक दर्शनीय और क्रांतिकारी स्थान हो गया। उस टाँड़ पर स्थित वह वट का पेड़, जिसके नीचे संकीर्तन होता था, पूजा का स्थान बन गया। आज वहाँ एक विशाल भवन खड़ा है, जिसमें छः बड़े-बड़े कमरे हैं। प्रत्येक कमरा एक-एक संस्था का परिचायक है। सारा भवन ग्रामोद्योग और ग्राम-सहयोग का परिणाम-स्वरूप है। भवन का पहला कमरा अन्नागार है। इसमें पाँच सौ मन अन्न रक्खे हैं। दूसरा कमरा पुस्तक-भवन है। इसमें देश के इतिहास, भूगोल, मानचित्र, आदर्श पुरुषों के जीवन-चरित्र, रामायण और महाभारत आदि धार्मिक पुस्तकें, दैनिक, साप्ताहिक और मासिक हिंदी-पत्र और पत्रिकाएँ रक्खी हैं। तीसरा कमरा अतिथि-भवन है। इसमें श्रांत पथिकों और अभ्यागतों के विश्राम के लिये सभी आराम के सामान रक्खे हैं। चौथा कमरा संकीर्तन-भवन है। इसे सभा-गृह भी कह सकते हैं। यह सबसे बड़ा कमरा है। इसके गँच पर एक बड़ी दरी बिछी है, जिस पर पाँच सौ से

कम आदमी नहीं बैठ सकते। कमरे के मध्य भाग में एक छ फ़ीट की चौकी बिछी है, जो क़ालीन से आच्छादित है। उस पर एक मसनद रक्खी है, और संकीर्तन के सब साज भी। उस कमरे की पश्चिमी दीवार से लटकती एक घड़ी सदा टिक-टिक की आवाज़ करती है। पाँचवाँ कमरा शिक्षा-मंदिर है। इसमें छोटे-छोटे साठ आसन बिछे हैं। प्रत्येक आसन के सामने छोटे-छोटे, एक-एक हाथ के, डेस्क रक्खे हैं। प्रत्येक डेस्क में स्लेट, पेंसिल और किताबें रक्खो हैं। इसी मंदिर में आस-पास के निरक्षरों की पढ़ाई होती है। छठा कमरा औषधालय है, जिसमें चार-पाँच आलमारियाँ रक्खी हैं। उनमें ओषधियों की शीशियाँ रक्खी हैं। कमरे के मध्य में एक टेबुल और कुर्सी रक्खी है। एक छोटा, गद्दीदार बेंच भी रोगियों की जाँच के लिये रक्खा है। मेज़ पर एक बही और छपे हुए व्यवस्था-पत्र हैं।

यह नदपुरा-सार्वजनिक मंदिर गाँव की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के उद्देश्य से बना है।

---

[१३]

दीर्घकाय के जेल-जीवन में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है। वह अब जेल से घृणा नहीं करता, वरन् इस जीवन को प्यार करता है। मनुष्य कुछ नहीं है बजाय कर्तव्य के पुतले के। नीच-से-नीच, घृणित-से-घृणित, पापी-से-पापी कर्तव्यों के सहारे ऊँच, प्रतिष्ठित और पावन-चरित्र हो जाते हैं। कोई भी नया वातावरण मानव पसंद नहीं करता। उसके विरुद्ध आवाज़ उठाता है। पर जब उसमें अभ्यस्त हो जाता है, तो वही वातावरण उसके लिये रुचिकर प्रतीत होता है। उसी में विचरना चाहता है। दीर्घकाय के मानसिक परिवर्तन का यही मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है।

दीर्घकाय अब सभी कार्यों का संपादन अनुराग से करता है। उसे कभी थकावट नहीं मालूम होती। कठोर-से-कठोर सश्रम कार्य हलके मालूम होते हैं, जब हम उन कार्यों में अनुरक्ति रखते हैं। ताड़ पर रस्सी के सहारे चढ़ना बड़ा कष्टप्रद है, पर ताड़ी के प्रेमी के लिये यह बाएँ हाथ का खेल है। तूफ़ानों से क्षुब्ध सागर में डुबकियाँ लगाना जान को ख़तरे में डालना है, पर समुद्र-गर्भ के रत्नों में प्रेम रखनेवाले मनुष्यों के लिये यह आसान काम समझा

जाता है। दीर्घकाय के लिये कोल्हू पेरना, मिट्टी खोदना सब आसान हो गए। वह अब दूसरों से सहानुभूति रखने लगा। जिस क़ैदी को कराहते सुनता, दौड़कर उसकी सहायता के लिये पहुँच जाता। उसका स्वास्थ्य भी पहले की अपेक्षा अब अच्छा था।

दीर्घकाय को एक चिंता सदा दबाए रहती थी। जब कभी वह अपनी स्त्री, पतोहू तथा घर की स्थिति की कल्पना करता, व्याकुल हो जाता। वह जानता था, उसके घर में न एक कण अन्न है, और न एक फूटी कौड़ी। गाँववालों से उसने जैसा व्यवहार किया था, वह सदा उसकी आँखों के सामने नाचता रहता था। कुछ महीनों तक तो उसे घर की ओर से बुरी ख़बरें मिलती रहीं, पर जब उसने सुना कि नदपुरा-ग्राम-सुधार-संघ ने उसके परिवार के भरण-पोषण का भार अपने ऊपर ले लिया है, वह ग्लानि में गड़ गया। यह पहली बार थी कि इसने आत्मग्लानि की अनुभूति की।

उसे विश्वास नहीं होता कि जिसके बाप का उसने वध किया, वही उसके पीड़ित परिवार का कर्णधार कैसे हो जायगा। सच्ची बात छिपाए नहीं छिपती। वह अब अपनी नीचता के लिये और अनुताप करने लगा। उसने समझ लिया कि जिसने अपने जीवन का लक्ष्य लोक-सेवा बना रक्खा है, उसमें अहंभाव का अभाव और परमार्थ का वास

रहता है। उसके लिये लोक ही परिवार है। वह उस दिन का स्वप्न देखने लगा, जिस दिन जेल से निर्मुक्त होकर वह नदपुरे के महावीर-दल का सदस्य बनेगा, और पीड़ितों के त्राण में अपना जीवन विसर्जित कर देगा। वह गाँव की सड़क तैयार करेगा, अहरा बाँधने में मदद देगा, मल-मूत्र की सफ़ाई करेगा, कुएँ स्वच्छ रक्खेगा, और मवेशियों की चराई की व्यवस्था करेगा।

इन्हीं विचारों में मग्न था कि जेल की घंटी सुन पड़ी। दौड़ा हुआ पैरेड-स्थान पर गया, जहाँ पंडित दीनबंधु 'ब्रिटेन जापान-युद्ध के प्रति भारतीयों के कर्तव्य' पर व्याख्यान दे रहे थे—

"जापान भारत पर आक्रमण करनेवाला है। इसलिये प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है कि वह अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिये प्राण विसर्जन कर दे। जापानी बड़े नृशंस होते हैं। वे शहरों पर बम-गोले बरसाते हैं। तोपों से क़िले उड़ा देते हैं। शांति-प्रिय जनता की हत्या करने में भी संकोच नहीं करते। अतः ऐसे आक्रमणकारियों को नष्ट करने के लिये राष्ट्र की सारी शक्तियाँ लगा देनी चाहिए। आपस की भिन्नता भूल जानी चाहिए। महिलाओं को पुरुषों के कामों में लग जाना चाहिए। माता की ममता उन्हें खो देनी चाहिए। जिस प्रकार मा को अपने बेटे पर ममता है, स्त्री को अपने पति पर, बहन को भाई पर, उसी प्रकार

देश को अपने सभी बच्चों पर ममता है। यदि देश नहीं रहेगा, तो माता-पिता, स्त्री-पुरुष और भाई-बहन के भेद कहाँ से उठेंगे। इसलिये प्रत्येक देश-प्रेमी को देश की सेवा-वेदी पर अपने को बलिदान करने के लिये तैयार हो जाना चाहिए।

"देश प्रत्येक आदमी से बलिदान चाहता है। यदि कोई यह कहे कि एक के बिना देश का कुछ नहीं बिगड़ सकता, तो मैं इस कथन को भ्रांतिमूलक समझता हूँ। कारण, जाति या देश एक-एक व्यक्ति का समुदाय है। जाति तभी जीवित रह सकती है, जब संकट में उसके प्रत्येक अंग अपना-अपना काम करें। जिस प्रकार शरीर की स्थिति के लिये हरएक अंग का अपना-अपना काम करना आवश्यक है, उसी प्रकार हरएक व्यक्ति के लिये अपनी बुद्धि, बल और ज्ञान से राष्ट्र की संरक्षा के लिये सहायता प्रदान करना जरूरी है। माताएँ देश की पुकार के सामने पुत्र-प्रेम भूल जाती हैं। डॉक्टर ओषध-अन्वेषण भूल जाता है। कवि कविता करना भूल जाता है। देश के लिये मरना प्रतिष्ठा की बात है। यदि मुझे देश के लिये मरना पड़े, तो मैं तैयार हूँ। जीवन ही देश-सेवा का मूल्य है। मनुष्य यदि देश के लिये, सत्य के लिये, सम्मान के लिये क़ुर्बानी न करे, तो उसका मनुष्यत्व कौड़ी काम का नहीं।

"आप क़ैदियों से भी देश की पुकार है। आपमें

जो देश के लिये लड़ना चाहें, सरकार उन्हें तुरंत आज़ाद कर देगी।"

  

रंगून में बम-वर्षा हो रही है। बड़े-बड़े प्रस्तरमय प्रासाद चकनाचूर हो रहे हैं। सुंदर-सुंदर घर जल-जलकर खाक हो रहे हैं। निर्दोष स्त्री, पुरुष और बच्चे बम-गोले के शिकार बन रहे हैं। दीर्घकाय अपने जत्थे के साथ रंगून के एक सैनिक-शिविर में पड़ा हुआ है। जापानियों की यह नृशंसता देख उसका खून खौलने लगता है। वह मरने और मारने में दक्ष है। हस्त-युद्ध में कोई भी माई का लाल उसे पछाड़ नहीं सकता। पहाड़ पर चढ़ने, नदी नाँघने और जंगलों में छिपकर लड़ने में वह अपना जोड़ा नहीं रखता। पर बम-गोलों की वर्षा रोकना उसकी शक्ति के बाहर की बात है।

तीन जनवरी, १६४२ को आठ बज रहा था। जापानी बमों की आवाज़ सुन पड़ी। दीर्घकाय ने दिलबहार, गुलाम प्रभृति को संबोधित कर कहा—"बेटा! आज मैं जापानियों का सामना करूँगा। तुम लोग मदद देना। यदि मैं मारा जाऊँ, तो मेरा शव नदपुरे पहुँचाना।"

यह कह ही रहा था कि धड़ाम-धड़ाम बम-गोले गिर पड़े। दीर्घकाय वहीं, रंगून की ज़मीन पर, दिलबहार के साथ जलकर ख़ाक के रूप में ढेर हो गया।

---

[१४]

१९४२ के फ़रवरी-महीने की दसवीं तारीख़ को नदपुरा-सार्वजनिक मंदिर का उद्घाटन श्रीयुत पी० सी० चौधरी के हाथों होगा, यह ख़बर गाँव-गाँव में विद्युत्-वेग से फैल गई। सारे देहात के स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध और युवा-किशोर आ-आकर जमा हुए। संकीर्तन-भवन मानव-सिरों से लबालब भर गया। तिल धरने की जगह न थी। संकीर्तन-भवन के बाहर एक शामियाना खड़ा था। वहीं संकीर्तन हो रहा था। बड़े-बड़े लोग भी इस अवसर पर आनेवाले थे। उनमें उल्लेखनीय पं० दीनबंधु और श्रीमती रमादेवी थीं। सबों की दृष्टि घड़ी के छ अंक पर थी।

छ का बजना था कि पी० सी० चौधरी की मोटर आ पहुँची। उसमें से चौधरी साहब, पं० दीनबंधु और श्रीमती रमादेवी उतरीं। जनता ने मुख-ध्वनि से सभापति का स्वागत किया, और सारा ग्राम-मंडल चौधरी साहब की जय, नदपुरा-ग्राम-सुधार-संघ की जय के निनादों से प्रतिध्वनित हो उठा। मंगलाचरण के बाद सभापति ने आसन ग्रहण किया, और मंत्री ने अपनी रिपोर्ट में कहा —

"मान्य सभापति तथा जनता जनार्दन! आज से तीन वर्ष

पूर्व नदपुरा-गाँव अशांति का केंद्र था, फूट का अड्डा, विग्रह का निकेतन तथा मूर्खता की रण-स्थली। इस गाँव में ६८ प्रतिशत निपढ़ थे। मुक़दमा लड़ना, दूसरों को सताना, भलों की हँसी करना इस गाँव के प्रमुख मनुष्यों के व्यवसाय थे। इस गाँव में कोई बीमार पड़ता, तो या तो वह बेमौत मरता या रामपुर-औषधालय की शरण लेता। अनाथों, असहायों, विधवाओं, अंधों और लँगड़ों के भरण-पोषण के लिये गाँव में कोई व्यवस्था न थी।

"धन्यवाद है इस गाँव की जनता को; और साधुवाद है श्रीमती कमोददेवी को, जिनकी सहकारिता से नदपुरा एक तीर्थ-स्थान बन गया। जिस सार्वजनिक मंदिर का उद्घाटन मान्य सभापतिजी करेंगे, उसके निर्माण का विशेष श्रेय श्रीमती कमोददेवी को है। उनकी मदद के बिना यह मंदिर कल्पना के रूप ही में रहता। श्रीमान् चमरू धीवर ने ६००) की पेटेंट ओषधियाँ मँगवा दी हैं। इसके लिये ग्राम-सुधार-संघ उनका आभारी है। संघ का ग्राम-भांडार अब विधवाश्रम के नाम से प्रख्यात होगा।

"इस सार्वजनिक मंदिर के छ विभाग हैं—(१) संकीर्तन, (२) चिकित्सा, (३) शिक्षा, (४) पुस्तकालय, (५) अतिथिसेवा और (६) अन्न-संचय।

"आप लोगों को यह सुनकर अति आनद होगा कि महिला-चिकित्सा-विभाग की देख-रेख श्रीमती कमोददेवी

करेंगी। श्रीयुत हरदेव, जो कुड़ गुरु ट्रेनिंग के अध्यापक थे, अब पेंशन लेकर हम लोगों के बीच पधारे हैं। इन्होंने पुरुष-चिकित्सा-विभाग का भार अपने कंधे पर लिया है। अन्य विभाग के सभी कार्यकर्ताओं की सुंदर व्यवस्था हो गई है। केवल एक विधवाश्रम है, जिसकी योग्य संचालिका का अभाव ग्राम-सुधार-संघ महसूस कर रहा है। देखें, ईश्वर कब एक निःस्पृह सेविका इस विभाग को प्रदान करता है।

"ग्राम-सुधार-संघ के अधीन एक महावीरी दल है। इसमें ४० सैनिक हैं, जो श्रीयुत फूलेनाजी धीवर के नेतृत्व में काम करते हैं। इस दल के उद्देश्य गाँव में शांति का संरक्षण करना, गाँव की बाह्य आक्रमणों और अत्याचारों से रक्षा करना, पंचायत को न्याय करने में मदद पहुँचाना, ग्राम-सड़क, सफ़ाई आदि का निरीक्षण करना आदि हैं।

"अब मैं श्रीयुत पी० सी० चौधरी साहब सभापति से अनुरोध करता हूँ कि वह इस सार्वजनिक मंदिर का उद्घाटन कर हम लोगों को कृतकृत्य करें।"

सार्वजनिक मंदिर का उद्घाटन करते हुए पी० सी० चौधरी ने जिस समय व्याख्यान देना शुरू किया, उस समय सारी सभा में खलबली मच गई। नजर उठाकर देखा, तो सामने एक पिटारी लिए हुए चार आदमी वहीं खड़े हो गए। सभी आगंतुक परिचित थे।

सबने उठकर पिटारी में बंद मृतात्माओं की राख का सम्मान किया, और पिटारी चौकी पर रक्खी गई। चौधरी साहब जनरव को बात-की-बात में प्रशांत कर बोले—"श्रीयुत जंगबहादुर, भद्र महिलाओ तथा समागत सज्जन-वृंद! मैं नदपुर के ग्राम-सुधार-संघ का कृतज्ञ हूँ। इसने मुझे इस गाँव की समुन्नति तथा सुधार देखने का एक सुंदर अवसर प्रदान किया है। रामपुर-जिले में यह संस्था अपना सानी नहीं रखती। मुझे इस गाँव का कलंक से भरा इतिहास भी मालूम है। यही गाँव है, जहाँ आज से दो वर्ष पहले नरेंद्र-सा रईस मारा गया था। यह गाँव आफत की पुड़िया था। इस गाँव के किसानों को भर-पेट अन्न नहीं मिलता था। कुप्रबंध के कारण इसके सभी अहरे और बाँध लुप्त हो गए थे। जिस दीर्घकाय के शव-भस्म की इज्जत आपने अभी की है, उसके उपद्रवों के मारे यह गाँव पनाह माँगता था।

"पर तारीफ है जंगबहादुर-से रईस की, और प्रशंसा है कमोद-सी देवी की, जिनके उद्योग से यह भवन निर्मित हुआ है, जो ग्राम की सारी समुन्नति का साधन होगा। मुझे यह कहने में थोड़ा भी संकोच नहीं हो रहा है कि यह एक आदर्श गाँव है। इसका एक भी मुकद्दमा अब रामपुर-कचहरी में नहीं जाता। आज सारा गाँव एकता के सूत्र में गुँथा हुआ है। जिन लोकोपकारी आदमियों ने इस गाँव

को क्षति पहुँचाई थी, आज वे भी इस गाँव की सुधार-धारा में निमग्न हो गए हैं। इस गाँव ने यह सिद्ध कर दिखा दिया है कि अपकारी और शत्रु भी प्रेम करने पर परोपकारी और मित्र बन जाते हैं। रामपुर के दूसरे-दूसरे ग्रामों से मेरा अनुरोध है कि वे नदपुर का अनुसरण करें। मुझे यह घोषित करते बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि कल से श्रीमती रमादेवी विधवाश्रम का भार अपने कंधे पर उठावेंगी, और जीवन-पर्यंत इसकी सेवा करेंगी।

"नदपुरा-ग्राम-सुधार ने जो अभी तक किया है, वह एकांगी समुन्नति है। नदपुरा अखिल भारत का एक क्षुद्रातिक्षुद्र अंश है। नदपुरा का प्रयास तभी सफल समझा जायगा, जब भारत के सभी गाँव समुन्नत होंगे।"
